RNI No. MPHIN/2008/25073 डाक प्रेषण : प्रतिमाह की 7 तारीख डाक पंजीयन क्रमांक मालवा डिवीजन/324/2016-2018

प्रेषक : मुकेश वर्मा (प्रधान संपादक)
'समावर्तन' (हिन्दी मासिक)
माधवी, 129, दशहरा मैदान
उज्जैन (म.प्र.) 456 010

पुस्त-प्रेष्य

यहाँ पते चिपकायें

स्वामी, प्रकाषक और मुद्रक अजय भट्टाचार्य द्वारा आकृति ऑफसेट, 5 नईपेठ, उज्जैन से मुद्रित एवं माधवी 129, दषहरा मैदान, उज्जैन से प्रकाषित। सम्पादक : निरंजन श्रोत्रिय।

दस वर्षों से निरन्तर प्रकाशित 118 वाँ अंक

ISSN - 2348-8638

समावर्तन

वर्ष 10 ■ अंक 10 ■ पूर्णांक 118 ■ जनवरी 2018 ■ ₹60/-

मासिक पत्रिका

अभिमुख : रमेश दवे

अनन्तिम : मुकेश वर्मा

मेरा नमन : अजय भट्टाचार्य

रेखांकित : मृगतृष्णा की कविताएँ

चयन : निरंजन श्रोत्रिय

कहानी : दरका हुआ दर्पण और

खंडित छबियाँ : मालती जोशी

लघुकथाएँ : उमेश महादोषी

रंगशीर्ष

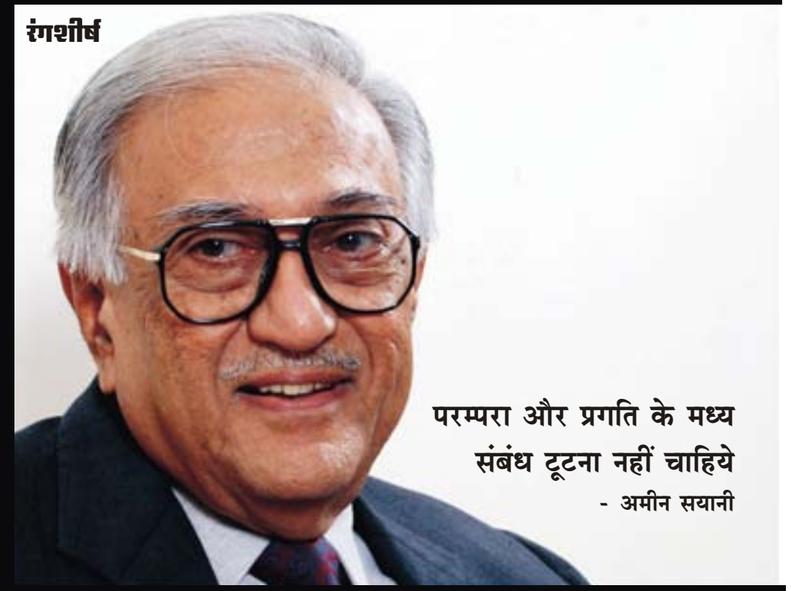

परम्परा और प्रगति के मध्य संबंध टूटना नहीं चाहिये
- अमीन सयानी

एकाग्र

साहित्य को पाठक नहीं मिलेंगे और वह समाप्त हो जायेगा- ऐसा मैं नहीं मानता !
- दामोदरदत्त दीक्षित

प्रथम पृष्ठ, वीक्षा, साहित्यिक हलचल

काव्यराग-14

(समावर्तन के अधबीच कविता केन्द्रित अर्द्धवार्षिक स्तम्भ)

इस बार त्रिलोचन जन्मशती पर विशेष

काव्यभूमि : श्रीराम दवे

त्रिलोचन की कविताएँ

त्रिलोचन की कविता का स्थापत्य : ओम निश्चल

गीत चतुर्वेदी की कविताएँ

शिवकुमार अर्चन की ग़ज़लें

समकाल : कथाकाल

वीणा सिन्हा की कहानी : चुनमाई

चयन : मुकेश वर्मा

ISSN - 2348-8638

वर्ष 10 ■ अंक 10 ■ पूर्णांक 118 ■ जनवरी 2018 ■ रु. 60/-

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नयीदिल्ली द्वारा मान्यता प्राप्त
दुष्यंत कुमार स्मारक पाण्डुलिपि संग्रहालय भोपाल द्वारा कमलेश्वर पुरस्कार वर्ष -2010
महाराष्ट्र राज्य हिन्दी साहित्य अकादमी द्वारा मान्यता प्राप्त

समावर्तन

मासिक पत्रिका

सम्पादक मण्डल

संस्थापक : सम्पादन समन्वयक
प्रभातकुमार भट्टाचार्य, उज्जैन

अध्यक्ष : सम्पादक मण्डल
रमेश दवे, भोपाल
मो. 94065 23071

निदेशक प्रबन्धन
रमेश सोनी, इन्दौर
मो. 99264 97611

प्रधान सम्पादक
मुकेश वर्मा, भोपाल
मो. 94250 14166

सम्पादक
निरंजन श्रोत्रिय, गुना
मो. 98270 07736

कार्यकारी सम्पादक : कार्यालय प्रमुख
श्रीराम दवे, उज्जैन
मो. 94259 15010

प्रबन्ध सम्पादक
सदाशिव कौतुक, इन्दौर
मो. 98930 34149

कला सम्पादक
अक्षय आमेरिया, उज्जैन
फो. 0734 2561120

जनसम्पर्क अधिकारी
प्रकाश बांठिया, उज्जैन
मो.98260-69558

सह सम्पादक
राजीव शुक्ला (संस्कृति), इन्दौर
निवेदिता वर्मा (सरोकार), उज्जैन
राधेश्याम मिश्र (प्रबन्ध), उज्जैन

सहायक सम्पादक
वाणी दवे, हरदीप दायले, उज्जैन

कार्यालय सहायक
संजय मालवीय,उज्जैन

सम्पादक मण्डल के सभी पद अवैतनिक है।

सम्पादकीय : प्रकाशकीय कार्यालय
''माधवी'', 129, दशहरा मैदान,
उज्जैन (म.प्र.) 456010
फोन : 0734 2524457
(समय प्रातः 10 से 2 बजे तक)
ईमेल : samavartan@yahoo.com
वेबसाइट : www.samavartan.com

सह संस्थापक : सम्पादन परामर्शी
अभिलाष भट्टाचार्य, मुम्बई

मुख्य संरक्षक
संतोष चौबे, भोपाल

सरंक्षकद्वय
ओम अमरनाथ, उज्जैन
राजू पटेल, मुम्बई

परामर्श मण्डल
गिरिराज किशोर (कानपुर), रश्मि वाजपेयी (दिल्ली), नन्दकिशोर नौटियाल (मुम्बई), विश्वनाथ सचदेव (मुम्बई), सादिक (दिल्ली), मंजु तिवारी (भोपाल), उर्मिला शिरीष (भोपाल), महेन्द्र गगन (भोपाल), सत्यमोहन वर्मा (दमोह)

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक
डॉ. अजय भट्टाचार्य, सूरत

समावर्तन का मूल्य
व्यक्तिगत सदस्यता प्रति अंक : 60 रु. वार्षिक : 600/-
संस्थागत प्रति अंक 75/- वार्षिक 750/-
विदेश के लिए प्रति अंक : 10 $ वार्षिक : 100/- $

चेक पर केवल 'समावर्तन' लिखें तथा चेक अथवा मनिआर्डर निम्नलिखित पते पर भेजें
डॉ.प्रभातकुमार भट्टाचार्य
''माधवी'', 129, दशहरा मैदान,
उज्जैन (म.प्र.) 456010

समावर्तन का संचालक मण्डल
प्रनति भट्टाचार्य - अध्यक्ष, उज्जैन
कृष्णा बैनर्जी - संचालक, मुम्बई
तुहिन भट्टाचार्य - प्रबंध संचालक,सूरत

विशेष सम्पादक- वक्रोक्ति
सूर्यकान्त नागर, इन्दौर मो. 9893810050

विशेष सम्पादक- नाट्यराग
भारतरत्न भार्गव - नयीदिल्ली
मो.9811621626

विशेष परामर्शी -लोकराग
शिव चौरसिया, उज्जैन
फो. 0734-2516373

निदेशक - समावर्तन संकुल (प्रतिनिधि मण्डल)
प्रकाश रघुवंशी
उज्जैन, मो. 94250 -91114

दिल्ली ब्यूरो चीफ
परवेज़ अहमद
219, समाचार अपार्टमेन्ट मयूर विहार फेज़-1
दिल्ली-110054, मो. 098111 -54371

मुद्रणालय
आकृति ऑफसेट, 5 नईपेठ, उज्जैन (म.प्र.)

© सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक एवं प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है।
प्रकाशित रचनाओं के विचार से 'समावर्तन' का सहमत होना आवश्यक नहीं।
समस्त विवाद उज्जैन न्यायालय के अन्तर्गत विचारणीय।

समावर्तन

जनवरी -2018

इस अंक में

प्रथम पृष्ठ : वन्देमातरम् : केदारनाथ शुक्ल 05

अभिमुख : नया वर्ष, नया विमर्श : रमेश दवे 06

मेरा नमन : इनसे मिलिये (छह) : अजय भट्टाचार्य 07

रंगशीर्ष

अमीन सयानी

परिचय : अमीन सयानी : 08

आज कोई गहराई में उतरना ही नहीं चाहता..... : 09

साक्षत्कार : अमीन सयानी से रफीक खान की बातचीत

एकाग्र

दामोदरदत्त दीक्षित

परिचय : दामोदरदत्त दीक्षित : 41

आत्मकथ्य : बात-बात में बात : 42

कहानी : धोखाधड़ी : 44

दीक्षितजी के लेखन पर विद्वानों की प्रतिक्रियाएं : 47

दामोदरदत्त दीक्षित से कमलेश भट्ट की बातचीत : 48

रेखांकित : मृगतृष्णा की कविताएँ : चयन : निरंजन श्रोत्रिय : 18

कहानी : दरका हुआ दर्पण और खंडित छबियाँ : मालती जोशी : 22

समकाल कथाकाल : वीणा सिन्हा की कहानी : चुनमाई : चयन : मुकेश वर्मा : 26

लघुकथाएँ : उमेश महादोषी : 30

काव्यराग-14

(कविता केन्द्रित अर्द्धवार्षिक स्तम्भ) 31-40

वीक्षा : रमेश दवे, सूर्यकांत नागर, मनीष वैद्य, बीना चौधरी : 52

साहित्यिक हलचल : 59,श्रद्धांजलि : सुनीता जैन : छबिलकुमार मेहेर : 60

अनंतिम : मुकेश वर्मा : 62

अक्षर विन्यास : विवेक शर्मा, हेमेन्द्रसिंह चौहान * मुद्रण संशोधक : गरिमा दवे, ऋषि तिवारी

प्रथम पृष्ठ

अथर्ववेदीय भूमिसूक्त वैश्विक-साहित्यिक धरोहर है। भूमण्डल के वैभव का आपाततः ऋषिद्रष्ट दिव्य-संस्कारानुप्रणित इस सूक्त में ६३ मन्त्र है। निर्दिष्ट सूक्त का अनुवाद/पुनर्रचना/भावानुवाद...अनेक विद्वानों द्वारा प्रथित है। 'लेखनी धृष्टता' मैंने भी की है।

// वन्दे मातरम्.....3 //

मातृभूमि का कलेवर
मध्य-भाग 'नाभि' है;
पोषण सामर्थ्य उल्लास भरा,
मानव अस्तित्व का रक्षण है
विश्वास हमारा यही प्रबल है।।

माता-सा पालन करती
भूमि माता मेरी है-
यही घोषणा करता हूँ-
पृथिवी-पुत्र कहलाता हूँ।।
(माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः)
पर्जन्य देव पिता रूप में
पितृ-धर्म पालन तत्पर
सस्य सम्पदा देते हैं।।

भूमाता का धरातल
रचित वेदियों से सुन्दर है,
विश्व-मंगल कामना संकल्प
यज्ञानुष्ठान निरन्तर है-
सदुपदेश-सत्संग जहाँ पर,
भूमाता समृद्ध करे।।

हे मातृभूमि!
बहुतेरे हमारे द्वेषी,
छल-बल से अपमानित करते,
-मनस्ताप प्रदाता ये-
अनिष्ट कर्मी- यहाँ वहाँ,
दासभाव से करते धिक्कार,
ध्येय जिनका हिंसा कर्म है-
मातृभूमि कर दो निःशेष।।

वन्देमातरम्...वन्दे मातरम्...वन्दे

हे मातृभूमि!
जन्म हुआ तेरी गोद में,
चलना सीखा तेरे आंगन में,
चल-अचल सब धारण करती हो,।।

रवि-प्रकाश अमृत-धारा-सा,
धरा-धरातल चमकीला है,
और/जीवन-ज्योति उज्ज्वल है।।

हे मातृभूमि!
जन-जन का सम्मेलन हो,
मधुर-वाणी का व्यवहार हो
हम भी मीठी बोली बोलें,
यही निवेदन अर्पित है।।

हे मातृभूमि!
औषधियों की माता हो,
अचला स्वरूप दृश्य-बन्ध है,
सत्य-धर्मा रक्षिका कहलाती,
शिवत्व सुख की जननी हो,
सेवा धर्म से विमुख न हो,
संग सदा यह निश्चय रहे।।

हे मातृभूमि!
पृथिवी पर अग्नि है,
औषधियॉ प्राण-प्रद है
जल-मय अग्नि दर्शन है,
पत्थरों में चकमक है;
पशुओं में अग्नि-
जठराग्नि है- मनुष्यों में-
-भोजन पचन का विधान है।।

अथर्व भूमिसूक्त
12/11-21

आशय प्रस्तुति : डॉ. केदारनाथ शुक्ल
61/8, आजादनगर, उज्जैन
फोन - 0734-2512034

नया वर्ष, नया विमर्श

रमेश दवे

समावर्तन के समस्त पाठकों, शुभचिन्तकों और सहयोगियों का नववर्ष में हार्दिक अभिनंदन और भावी भूमिका के लिए शुभकामनाएँ।

बीता वर्ष स्मृतियाँ छोड़ गया और नया वर्ष नए विचार, नए विमर्श और नये संकल्पों से नई-नई स्मृतियाँ रचेगा। राजनीति में अब वैसा बौद्धिक विमर्श लगभग समाप्त ही हो गया है जो हमारी चेतना को जाग्रत करे, अपने देश, अपनी संस्कृति और अपने दायित्वों के प्रति सचेत करे। राजनीति का समूचा विमर्श अब मीडिया में क़ैद है। राजनीतिक दलों की आमसभाओं के जन-सम्बोधनों की परम्परा समाप्त हो गई है। लोकतांत्रिक संवाद या तो समस्या संवाद गया है या दलों, नेताओं और उद्योगों से जुड़े अमीरों का संकीर्ण संवाद बन कर रह गया है। साम्प्रदायिकता, मंदिर-मस्ज़िद विवाद और अपराध टी.वी. चैनलों के मुख्य विषय हैं। हमने स्वतंत्रता के सत्तर वर्ष बाद के वर्षों में जो उपलब्धियाँ कीं, जो विश्वस्तर पर छवि बनाई और विज्ञान, तकनीक एवं साहित्य में जो कुछ भी नया किया उस पर विमर्श या तो बिल्कुल नहीं या अत्यन्त सीमित। ऐसा क्यों-यह प्रश्न हर लोकतांत्रिक मानस का प्रश्न होना चाहिए। यदि देश का बुद्धिजीवी, देश का साहित्य और साहित्यकार विमर्श की परम्परा से भटक गया तो जनतंत्र गूंगा हो जाएगा।

भारत में एक मनोविज्ञान यह भी है कि जो कुछ भी काम हो वह सरकार ही करे फिर चाहे वह साहित्यिक, राजनीतिक, सामाजिक या अध्यात्मिक विमर्श ही क्यों न हो। तथाकथित साहित्यकारों की पुस्तक लोकार्पणी भीड़ साहित्य में उमड़ पड़ी है और अनेक संस्थाएँ ऐसी पैदा हो गई हैं जो प्रायोजित प्रकाशन, लोकार्पण, सम्मान और पुरस्कार का व्यवसाय करती हैं। जो अपने को उच्च स्तर का जेन्युइन साहित्यकार मानते हैं, वे अपनी रचना और स्वयं अपने को इतना बड़ा मानने लगे हैं कि उनसे विमर्श का संस्कार पैदा होने के बजाए कुतर्कों से लदा अहंकार पैदा होता है। साहित्यिक विमर्श अब किसी राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय कृति को लेकर कम ही होता है। साहित्य के पास ही तो वह निडर, पूर्वग्रह-निरपेक्ष स्पेस है जहाँ साहित्यकार सत्य से साक्षात्कार करवा सकता है। विडम्बना है कि साहित्यकार भी साहित्य के सिरहाने पर सिर रखकर ऊँघ रहा है।

'समावर्तन' नए वर्ष में नई पहल करने के लिए उत्सुक है। हमारी मंशा है कि वाचिक-विमर्श हो न हो, लेकिन लेखन में तो विमर्श हो। साहित्यकार साहित्यकारों से जो विमर्श करता है वह भी सीमित है। ज्यादा से ज्यादा ऐसा विमर्श दलगत प्रतिबद्धता के साथ होता है। मार्क्स को पढ़े बिना मार्क्सवाद पर बहस होती है, गांधी को पढ़े बिना गांधी पर वाद-विवाद होता है। एक निहायत स्वतंत्र और विचारधारा-निरपेक्ष चर्चा होती ही नहीं। ऐसा क्यों है?

देश में अनेक राजनीतिज्ञ हैं (जीवित या दिवंगत) जो साहित्यकार भी रहे हैं या हैं। राजनीति उनका आचरण है लेकिन साहित्य उनकी आस्था जयप्रकाश नारायण, डांगे, सच्चिदानंद सिन्हा, पी.सी.जोशी द्वय, बंगाल के पूर्व मुख्यमंत्री बुद्धदेव भट्टाचार्य, कन्नड़ साहित्यकार श्री मारन, श्री करुणानिधि, बालकवि बैरागी, जयललिता (अभिनेत्री), ए.पी.जे.अब्दुल कलाम (पूर्व राष्ट्रपति), शंकरदयाल शर्मा (पूर्व राष्ट्रपति), शंकरदयालसिंह आदि। डॉ.कर्णसिंह पूर्व प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रतापसिंह, अटल बिहारी वाजपेयी, इन्द्रकुमार गुजराल, मौलाना आजाद और खोज की जाए तो कई दलों के नेता, कवि, लेखक, पत्रकार ऐसे हैं जो साहित्यकार रहे हैं और कई वैज्ञानिक भी हैं जो स्वयं साहित्य रचते और पढ़ते हैं। वैज्ञानिक नार्लीकर तो स्वयं विज्ञान कथा-लेखक हैं एवं बहुत अच्छी हिन्दी बोलते भी हैं। समावर्तन अपने पाठकों एवं लेखकों से अनुरोध एवं आग्रह करता है कि वे हमें साहित्यकार राजनीतिज्ञ (चाहे किसी भी दल के हों) साहित्यकार, वैज्ञानिक, साहित्यकार इतिहासकार, समाजशास्त्री, साहित्यकार-आध्यात्मिक गुरु और ऐसे साहित्य-साहित्येत्तर युग्मों पर सामग्री उपलब्ध कराएँ ताकि विमर्श की एक नई खिड़की नववर्ष में खुले। समावर्तन तो वर्ष में कम से कम एक अंक साहित्यकार-राजनीतिज्ञ को केन्द्र में रखकर एकाग्र, रंगशीर्ष या सरोकार में नया विमर्श रचने के लिए संकल्पित है। समावर्तन का यह नवाचार राजनीतिक दलों की प्रतिबद्धता से न होकर स्वतंत्र चेतना और विचार से किया जाएगा। आइए इस विचार को एक विमर्शात्मक अभियान की तरह हम सब मिलकर सार्थक करें।

इस अंक में सुप्रसिद्ध कथाकार दामोदरदत्त दीक्षित पर जहां एकाग्र केन्द्रित है वहीं जाने-माने रेडियो उद्घोषक अमीन सयानी के कृतित्व पर रंगशीर्ष संयोजित है। समावर्तन का लोकप्रिय अर्द्धवार्षिक स्तम्भ 'काव्यराग' भी इस अंक में है। पुनः सभी को नववर्ष की शुभकामनाएं

(अध्यक्ष, सम्पादक-मण्डल)
मो.94065-23071

इनसे मिलिये (छह)

डॉ.अजय भट्टाचार्य
स्वामी-प्रकाशक-मुद्रक 'समावर्तन'

ज्योति जैन

मेरे बाबा (डॉ.प्रभातकुमार भट्टाचार्य) ने समावर्तन के 100वें अंक के लोकार्पण के बाद मुझसे कहा था कि गहराते आर्थिक संकट के चलते वे चाहते हैं कि समावर्तन का मासिक प्रकाशन स्थगित कर दिया जाये। तब मैंने लिखा था कि समावर्तन आपकी मानस सन्तान है जो लगभग 10 वर्षों से नियमित प्रकाशित हो रही है। आप ही बताइए कि मैं अपने 10 वर्षीय भाई को अनाथालय कैसे भेज दूँ। मेरी उपर्युक्त पंक्तियों पर पुरज़ोर तरीके से एक पाठक ने चिट्ठी में लिखा था कि हम पाठकों की भी तो जिम्मेदारी बनती है कि हम कुछ न कुछ करें। इस पत्र की लेखिका आदरणीय **श्रीमती ज्योति जैन** का नाम समावर्तन के इतिहास में अंकित हो गया। हम उनके प्रति अत्यन्त कृतज्ञ हैं। उनके बारे में लिख रहे हैं हमारे भाई साहब श्री श्रीराम दवे।

''समावर्तन के सहयोगियों में श्रीमती ज्योति जैन (इन्दौर) भी है। अपने लेखकीय अवदान से समावर्तन को समृद्ध करती आ रही ज्योति जी कवयित्री, लघुकथाकार, कहानीकार, उपन्यासकार, यात्रा संस्मरण लेखिका के साथ-साथ पारम्परिक माँडना कला की उत्कृष्ट कलाकार भी हैं। ज्योति जी की पुस्तकों का जहाँ बांग्ला और मराठी में अनुवाद हुआ है वहीं उनकी कई छुटपुट रचनाएँ गुजराती पंजाबी आदि भाषाओं में अनूदित भी है।

परिष्कृत और प्रगतिशील सोच रखते हुए तथा एक सुघढ़गृहिणी के दायित्वों को अत्यन्त कुशलता के साथ सम्पन्न करने वाली ज्योति जी सहृदय तो हैं ही - मुखर वक्ता और समीक्षक भी हैं महाराष्ट्र के विद्यालयों की कक्षा नौ के पाठ्यक्रम में उनकी लघुकथाएँ जहाँ पढ़ायी जा रही है वहीं उनके लेखन पर कुछ विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध छात्रों द्वारा शोध पत्रों का लेखन भी हुआ है।

सुप्रसिद्ध लघुकथाकार स्व.सतीश दुबे ने उनकी लघुकथाओं को विश्लेषित करते हुए कहा था - ''व्यक्ति के चेहरों को उजागर कर उसके आन्तरिक मनोभावों को तराशना, पारिवारिक, सामाजिक तथा अपने इर्द-गिर्द बिखरे संसार से उन विषयों को बटोरना जो सामान्य से इतर हो सकते हैं या अपनी चिन्तापरक सोच के उन बिन्दुओं को आकार देना जो जीवन की सार्थकता को सही अर्थ दे सकते हैं- ज्योति जैन की लघुकथाओं के मूल स्वर हैं।'' हाल ही में प्रकाशित उनका एक उपन्यास ''पार्थ...तुम्हें जीना होगा!'' अत्यन्त चर्चित और सराहा गया है। महाभारतकालीन अर्जुन ज्योति जी का प्रिय पात्र रहा है और यही कारण है कि उनके उपन्यास का शीर्षक पात्र पार्थ (अर्जुन) प्रत्येक युवा को कर्तव्य निष्ठ बने रहने, युद्धरत रहने और ईमानदार बने रहने की प्रेरणा देता है।

समावर्तन परिवार ज्योति जी की इस सदाशयता और सहजता को नमन करता है।

अमीन सयानी

जन्म : 21-12-1932 (भारत)
राष्ट्रीयता : भारतीय
कार्यक्षेत्र : उद्घोषक, रेडियो जॉकी
भारत के एक लोकप्रिय रेडियो उद्घोषक के रूप में प्रसिद्ध उन्होंने दक्षिण एशिया में तब ख्याति अर्जित की जब उन्हें रेडिया सीलोन द्वारा 'बिनाका गीतमाला' प्रस्तुत करने का अवसर मिला। ''भाइयों और बहनों'' कहने का उनका अन्दाज और उसमें घुला हुआ माधुर्य उन्हें तब भी लोकप्रिय बनाता था और आज 86 वर्ष की आयु में भी वे लोकप्रियता के उसी शिखर पर है। वे कई हिन्दी फिल्मों जैसे भूत बंगला, तीन देवियां, कत्ल आदि का महत्त्वपूर्ण हिस्सा भी रहें।
1945 से 60 के बीच उन्होंने अपनी माँ श्रीमती कुल्सुम सयानी द्वारा संपादित जर्नल 'रहबर' के संपादन में सहयोग प्रदान किया

सम्मान/पुरस्कार :

o वर्ष 2009 में पद्मश्री सम्मान।
o वर्ष 2006 में लिविंग लिजेन्ड अवार्ड (इंडियन चेंबर्स ऑफ कॉमर्स एण्ड इंडस्ट्रिज)
o दादा साहेब फालके अवार्ड 2006
o हाल ऑफ फेम अवार्ड (1993) इंडियन अकेडमी ऑफ एडवर्टाइजिंग फिल्म आर्ट)
o पर्सन ऑफ दि इयर अवार्ड (1992) लिम्का बुक ऑफ रिकार्ड।
o उपराष्ट्रपतिजी द्वारा स्वर्ण पदक (1991) इंडियन सोसायटी ऑफ एडवरटाइजर्स

संपर्क :- सोसिल कोर्ट दूसरा माला
महाकवि भूषण मार्ग, कोलाबा मुम्बई-1
फोन नं.22831515/22047538

आज कोई गहराई में उतरना ही नहीं चाहता....

आवाज की दुनिया के सितारे अमीन सयानी से रफीक खान द्वारा लिया गया एक साक्षात्कार

सबसे पहले तो आप सभी पाठकों से इस बात के लिये क्षमा चाहूँगा कि अमीन सयानी साहब का यह इंटरव्यू आप लोगों तक मैं समय पर पहुँचा नहीं पाया। इस इंटरव्यू को रिकॉर्ड करने के बाद मैंनें उसे कम्प्यूटर की हार्डडिस्क में सुरक्षित रख दिया था। व्यस्तता के कारण मुझे उस रिकॉर्डिंग को सुनकर लिखने का समय नहीं मिल पा रहा था। अब जाकर थोड़ा समय निकाल पाया इसलिये उसे लिखकर आप तक पहुँचा रहा हूँ। देर से ही सही पर मेरा मानना है कि कुछ शखिसयत ऐसी हैं जो कभी पुरानी नहीं होती इसलिये अमीन सयानी साहब का यह इंटरव्यू यदि और भी दस वर्ष बाद प्रकाशित होता तब भी पुराना नहीं होता, पाठक इसको तब भी बहुत दिलचस्पी के साथ पढ़ते।

जिन दिनों समावर्तन के लिए सिनेमा पर मैं नियमित स्तंभ लिखा करता था उन्हीं दिनों चर्चा के दौरान एक दिन संस्थापक-सम्पादक-समन्वयक आदरणीय प्रभात कुमार भट्टाचार्य जी से मैंनें पूछा कि सर, मैं अपनी इच्छा से किसी भी फिल्मी हस्ती का चयन कर लिखता हूँ परन्तु मैं चाहता हूँ कि कभी आप भी मुझे अभिरूचि बताएँ, मैं किस फिल्मी हस्ती पर लिखूँ ? तब उन्होंने मुझे कुछ फिल्मी हस्तीयों के नाम सुझाए और उस सूची में रेडियो जगत की जानीमानी शख्सियत अमीन सयानी जी का नाम भी सर्वप्रथम था। बस, उसी दिन मैंनें अपने मन में यह ठान लिया कि एक दिन अमीन सयानी साहब से रू-ब-रू मिलकर समावर्तन के लिए एक साक्षात्कार अवश्य करूँगा । अमीन सयानी साहब ब्रॉडकास्टिंग के पेशे से जुडे हुए थे इसलिए 1980 के दौरान मैं एक बार काम के सिलसिले में मुलाकात करने उनके दफ्तर गया था पर उस समय उनसे भेंट नहीं हो पाई थी इसलिए अमीन साहब से मेरा कोई पूर्व परिचय नहीं था । मैंने तय किया कि किसी दिन अवसर आने पर साक्षातकार हेतु अपना प्रस्ताव उनके समक्ष अवश्य रखूँगा। मन में यदि सच्ची लगन हो तो काम खुद-ब-खुद आसान हो जाते हैं। भारतीय फिल्म जगत के पितामह दादासाहेब फालके के 143वें जन्म दिवस पर मुम्बई के पाँच सितारा होटल 'टुलिया' में दादासाहेब फालके एकेडमी ने अवार्ड हेतु एक भव्य कार्यक्रम आयोजित किया गया था जिसमें वेक्स म्युजियम के लिए दादासाहेब की मोम से बनी प्रतिमा का अनावरण भी होना था। कार्यक्रम में फिल्म जगत की कई जानी-मानी हस्तीयाँ उपस्थित थी। अमिताभ बच्चन, निम्मी, सायरा बानो, काजोल, सुभाष घई, रविना टंडन, चन्द्रशेखर, स्व.दादासाहेब फालके परिवार के सदस्य आदि कई गुजरे और मौजूदा दौर की फिल्मी शख्सियतों के बीच अस्वस्थ होने के बावजूद दिलीप कुमार भी कार्यक्रम में उपस्थित थे। कार्यक्रम में शामिल होने के लिए मुझे भी विशेष रूप से आमंत्रित किया गया था और मेरा सौभाग्य था कि उन तमाम सितारों के साथ मुझे ससम्मान बैठनें का अवसर मिला। कार्यक्रम के दौरान जब मैंने अपने आस-पास आमंत्रित अन्य अतिथियों पर नजर डाली तो देखा कि एक सोफे पर अमीन सयानी साहब भी विराजे हुए हैं। दादासाहेब फलके की प्रतिमा के अनावरण का जब समय आया तब दिलीप कुमार, अमिताभ बच्चन और फालके परिवार के सदस्य मंच पर पहुँच गए साथ ही मीडिया जगत के तमाम फोटोग्राफर भी उस क्षण को अपने कैमरे में कैद करने मंच चढ़गए। मंच पर पहुँची भीड के कारण वी.वी.आई.पी. दीर्घा में बैठे हम सभी लोगों के लिए प्रतिमा के अनावरण का वह नजारा अदृश्य सा हो गया और यह समझ ही नहीं आया कि मंच पर क्या चल रहा है । मैंने देखा अमीन सयानी साहब भी अपने स्थान से मंच पर देखने का प्रयास कर रहे थे पर उन्हें भी शायद कुछ नजर नहीं आ रहा था । उस खाली अवसर का लाभ लेते हुए मैं अपने स्थान से उठकर अमीन सयानी साहब के पास पहुँच गया और चर्चा के दौरान उनसे साक्षात्कार हेतु किसी दिन समय देने के लिए निवेदन किया। अमीन साहब ने कहा कि दो दिन बाद आप मुझसे फोन पर चर्चा कर लें फिर हम इंटरव्यू के लिये किसी दिन का समय तय कर लेंगें। उस समय मुझे लगा कि अमीन साहब का इंटरव्यू तो बहुत आसानी से मुझे मिल जाएगा । दूसरे दिन सुबह मैंने अपने फिल्म जगत के एक पत्रकार मित्र को बताया कि मैं बहुत जल्द ही अमीन सयानी साहब का इंटरव्यू करने जा रहा हूँ तब पत्रकार मित्र ने मुझे यह कहकर निराश कर दिया कि ष्यह संभव ही नहीं कि अमीन सयानी साक्षात्कार के लिए राजी हो जाएँ, वह लोगों का इंटरव्यू करते हैं पर स्वयं का इंटरव्यू किसी को नहीं देते, कई लोग पहले भी प्रयास कर चुके हैं, आप भी प्रयास करके देख लीजिए। कुछ दिनों बाद पत्रकार मित्र द्वारा कही बात मुझे सत्य प्रतीत होती दिखाई दी। कई दिन, कई सप्ताह और महीने गुजर गए पर अमीन साहब का इंटरव्यू हाथ नहीं लगा। मैं जब भी अमीन साहब को फोन करता वह मुझसे बहुत अच्छी तरह बात करते, यहाँ तक कि वह मेरी आवाज की प्रशंसा भी करते पर इंटरव्यू के लिए समय देने की बात पर किसी न किसी बहाने टाल जाते। दो तीन दफा उनके दफ्तर में भी जाकर मुलाकात की पर वह हमेशा मुझे अपने कार्य में व्यस्त नजर आते। एक दिन तो इंटरव्यू के लिये कुछ संभावना बनी भी पर उस दिन वह अपने रिकॉर्डिंग रूम से निकलकर जब बाहर आए तो उनका स्वास्थ्य अचानक बिगड़ गया और इस तरह बात आगे भी टलती रही और मैं पूरी तरह से न-उम्मीद हो गया, परन्तु मैं फिर भी प्रयास करता रहा। महिनों इस प्रयास के दौरान एक लाभ यह हुआ कि मैं और अमीन साहब एक दूसरे को थोडा बहुत समझने लगे और हमारे आपसी संवाद में एक दूसरे के प्रति काफी अपनापन झलकने लगा पर इंटरव्यू अभी भी नदारद था।

एक दिन अमीन सयानी साहब ने फोन पर मुझसे कहा कि आप इंटरव्यू के दौरान मुझसे जो प्रश्न पूछेंगे उसकी एक प्रति मुझे भेज दें, उसके बाद ही मैं आपको इंटरव्यू देने के लिये निर्णय करूँगा। बहरहाल मैंने अधिक प्रश्न न लिखते हुए मात्र सात प्रश्न लिखकर उनके दफ्तर में भेज दिए। हातिमताई के लिए सात सवालों की पहेली को बूझना कठिन कार्य रहा होगा, ठीक उसी तरह मेरे लिए भी अमीन सयानी साहब के लिए सात सवालों का चयन करना इतना आसान नहीं था, विशेषकर उस व्यक्ति के लिए जो इंटरव्यू देने के लिए राजी

दादामुनि अशोक कुमार के साथ सयानी जी

ही न हो। आखिर वह दिन आ ही गया जब अमीन साहब ने मुझे इंटरव्यू के लिए समय दे दिया और वह समय उन्होंने अपनी डायरी में भी नोट कर लिया। अमीन सहाब ने मुझे तीन दिन बाद, शाम पाँच बजे अपने दफ्तर में आने का समय दिया था पर मुझे डर था कि अमीन साहब शायद उस दिन भी इंटरव्यू की बात को कहीं टाल न दें। अमीन सयानी साहब का दफ्तर मुम्बई के कोलाबा क्षेत्र में रीगल सिनेमा के पास सेसिल कोर्ट बिल्डिँग में स्थित है और शाम पाँच बजे के समय तमाम दफ्तरों के छूटने पर इस क्षेत्र के मार्गों पर बहुत ही व्यस्ततम यातायात होता है। कहीं यातायात में फँस न जाऊँ इसी समस्या को दृष्टिगत रखते हुए मैं निर्धारित समय से एक घंटा पूर्व यानि ठीक चार बजे अमीन साहब के दफ्तर पहुँच गया। अक्सर आने-जाने के कारण अमीन साहब के दफ्तर के लोग भी मुझे पहचानने लगे थे इसलिए उन्होंने मुझे आदर के साथ बैठाया और सेवा में पानी का गिलास सामने रख दिया। मैं जानता था अमीन साहब समय के बहुत पाबंद हैं और निर्धारित समय से पूर्व पहुँचने के कारण अमीन साहब तक मेरे आने का समाचार पहुँच न जाए इसलिए दफ्तर के एक व्यक्ति से मैंने निवेदन किया कि अमीन सहाब ने मुझे ठीक पाँच बजे का समय दिया था पर मैं एक घंटा पूर्व यहाँ पहुँच गया हूँ कृपया आप उनको पाँच बजने पर ही मेरे आने की सूचना देवें तब तक मैं यहाँ बैठकर प्रतीक्षा करूँगा। अभी मैं अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाया था कि देखा अमीन सयानी साहब ठीक मेरे पीछे खडे हैं। मैंने उनका अभिवादन कर कहा कि आप चिंता न करें मैं पाँच बजने पर ही आपसे सम्पर्क करूँगा। अमीन साहब ने कहा आ जाइये अन्दर आ जाइये इंटरव्यू शुरू करते हैं। मैंने कहा लेकिन अभी पाँच कहाँ बजे हैं, आपने तो मुझे ठीक पाँच बजे का समय दिया है। अमीन साहब ने कहा कि हाँ समय तो वही दिया था लेकिन आप अपना इंटरव्यू अभी से शुरू कर सकते हैं। अचानक मुझे अपनी बेवकूफी पर गुस्सा आया और सोचने लगा कि कहाँ तो अमीन साहब इंटरव्यू के लिए राजी ही नहीं थे और महिनों इन्तजार के बाद जब वह स्वयं कह रहें हैं कि आ जाओ इंटरव्यू कर लो तो मैं कह रहा हूँ नहीं अभी पाँच बजने में समय बाकी है।

अमीन साहब मुझे अपने साथ उस कक्ष में ले गए जहाँ वह हमेशा बैठते थे, उनकी टेबल पर उनके अपने दफ्तर की फाइलों का ज़ख़ीरा पडा हुआ था। अमीन साहब ने मुझसे पूछा आप चाय लेंगें या कॉफी? मैंनें कहा- चाय। अमीन साहब ने कहा कि चाय के बाद ही इंटरव्यू शुरू कीजिए। उस दिन अमीन साहब इंटरव्यू देने के लिये मनसिक रूप से पूरी तरह तैयार नजर आ रहे थे। मैं उनके सामने बैठा सोच रहा था कि जिस व्यक्ति ने बेगम अख्तर, सोहराब मोदी, नौशाद, तलत मेहमूद, अनील बिस्वास, सुरैया, सुरेन्द्र, अशोक कुमार, बी.आर.चोपडा, मोहन सहगल, मुकेश, लता मंगेश्कर, मीना कुमारी, हेमंत कुमार, आशा भोसले, मदन मोहन, गुलजार, महेन्द्र कपूर, सी.रामचन्द्र, वसंत देसाई, किशोर कुमार, प्राण, श्यामा, प्रदीप कुमार, निरूपा राय, अजीत, शक्ति सामंत, अमिता, सुनील दत्त, राज खोसला, डेविड, आगा, जॉनी वॉकर, मेहमूद, आई.एस.जौहर, मारूति, मुकरी, जगदीप, टुनटुन, वहीदा रहमान, गोपी कृष्ण, मजरूह सुल्तानपुरी, आर.डी. बर्मन, धर्मेन्द्र, अमिताभ बच्चन और न जानें कितनी बेशुमार हस्तीयों का इंटरव्यू किया है, क्या आज मैं उसी आवाज की दुनिया के सितारे का इंटरव्यू करने जा रहा हूँ। मुझे यह विश्वास नहीं हो रहा था।

चाय आने तक मैं उन्हें समावर्तन के विषय में बताने लगा कि हिन्दी साहित्य में रुचि रखने वाले पाठकों के लिए समावर्तन पत्रिका हर संभव प्रयास कर कला व साहित्य जगत की प्रतिभाओं की स्वच्छ व श्रेष्ठ सामग्री जुटा कर प्रकाशित करती है। यही कारण है कि आज समावर्तन को सिर्फ भारत में ही नहीं हिन्दी साहित्य में रुचि रखने वाले विदेशो में निवासरत भारतीय भी नियमित रूप से पढ़ते हैं, और मेरा भी यही प्रयास है कि फिल्म व कला जगत के चुनिन्दा लोगों पर पाठकों के लिए अच्छी सामग्री जुटाऊँ। आप जैसी शख्सियत का साक्षात्कार, हिन्दी साहित्य की पूर्णत निःस्वार्थ सेवा में मेरे लिए भी एक अवसर प्रदान करता है।'' अपनी चाय समाप्त करके आगे मैं कुछ और कहता उससे पहले ही अमीन साहब ने अपनी ओर से अचानक एक स्पष्टिकरण दे दिया। स्पष्टिकरण देने का उनका अन्दाज कुछ ऐसा था कि मैं क्षण भर के लिये चौंक गया।

अमीन सयानी- समावर्तन पत्रिका के विषय में आपने बहुत ही खूबसूरत बातें बताई लेकिन मैं एक बात आपके समक्ष और पाठकों के लिए पहले ही स्पष्ट कर देना चाहता हूँ ताकि आगे मुझपर कोई छींटाकशी की नौबत न आए। जैसा कि आपने बताया यह हिन्दी साहित्य से संबधित पत्रिका है पर हिन्दी साहित्य मेरे लिए हमेशा एक डरावना शब्द रहा है क्योंकि मैंने कभी न ज्यादा हिन्दी सीखी और न ही ज्यादा उर्दू सीखी। इन दोनों भाषाओं का जो सीधा-सादा मीठा संगम है यानि जिसे हिन्दुस्तानी जबान कहते हैं उसी जबान में, मैं पला बड़ा हूँ। बचपन से मैं मुम्बई में रहा हूँ इसलिए मेरे इर्द-गिर्द हमारे परिवार की गुजराती भाषा थी, मुम्बई वाली खिचडी हिन्दुस्तानी थी और अँग्रेजी। शुरूआती दौर में मैं सात वर्षों तक गुजराती का विद्यार्थी रहा, अँग्रेजी मैं अच्छी तरह जानता था क्यों कि मेरे बडे भाई हमीद सयानी अँग्रेजी के ब्रॉडकास्टर थे इसलिए उनके मार्ग दर्शन द्वारा मुझे अँग्रेजी भाषा सीखने और उसमें गहराई तक उतरने का अवसर मिला। गुजराती और हिन्दी तो मुझे बहुत अच्छी तरह आती थी पर यूँ समझ लीजिए कि हिन्दी-उर्दू के बस मैं किनारे-किनारे ही था। मुम्बई में जन्म हुआ था इसलिए मेरी भाषा पर मराठी का प्रभाव था, कुछ बँगाली-पँजाबी और सिंधी मित्र थे इस लिए उन भाषाओं का भी मुझपर प्रभाव था। हमारा परिवर कच्छी परिवार है लेकिन मैं कच्छ कभी नहीं गया और न ही कच्छी भाषा जानता हूँ। इस तरह इन तमाम भाषाओं के प्रभाव में आकर मेरी अपनी भाषा भी खिचडी हो चुकी है इसलिए मेरा यह निवेदन है कि प्रश्न पूछते समय हिन्दी साहित्य के नाम पर आप क्लिष्ट-हिन्दी शब्दों का प्रयोग कर कृपया मुझे डराने का प्रयास न करें।

(मैं दिल थामे अमीन साहब के स्पष्टिकरण को सुनता रहा पर उनके कहे अंतिम वाक्य पर मैं मुस्कुरा दिया क्योंकि मैं जानता था मेरे माध्यम से वह समावर्तन के पाठकों के समक्ष स्वयं को हिन्दी में कमतर दर्शानें का प्रयास कर रहे थे। साक्षात्कार से पूर्व, महिनों तक दूरभाष और रू-ब-रू मिलने पर हमारे बीच जो थोडा-बहुत संवाद होता था उसी से मुझे यह ज्ञात हो गया था कि अमीन सयानी अँगेजी के साथ-साथ हिन्दी और उर्दू भाषा पर भी अपनी गहरी पकड रखतें हैं। वर्षों तक आवाज की दुनिया में भाषाओं से खेलकर सफलता को छू लेने वाला व्यक्ति स्वयं को कम दर्शाए तो समझ लेना चाहिए कि यह उस व्यक्ति की महानता व बड़प्पन है इसलिए मेरा यह मानना था कि अमीन सयानी साहब जिस सम्मान के हकदार हैं वह बात पाठकों तक हर हाल में पहुँचनी चाहिए फिर भी उनका मान रखते हुए मैंनें इस बात को स्वीकार लिया कि आगे जो भी प्रश्न उनसे करूँगा वह सरल हिन्दुस्तानी भाषा में ही होगा। जब तयशुदा प्रश्न से हटकर अमीन साहब ने स्वयं ही संवाद का सिलसिला शुरू किया तब मैंनें भी पूर्व में उनको दिये हुए सात प्रश्नों की सीमा को भूलकर उनके ही स्पष्टिकरण से उठा एक नया प्रश्न पूछ लिया और सात निर्धारित प्रश्नों की सीमा को तोड़कर यह सिलसिला इंटरव्यू के मध्य आगे भी चलता रहा।)

रफीक खान : जब हिन्दी और दिगर भाषाओं की बात चल ही रही है तो मैं आपसे पूछना चाहूँगा कि आपकी माता जी एक पत्रिका निकालती थीं जो तीन भाषाओं में प्रकाशित होती थी। हिन्दी भी उसमें से एक भाषा थी और मैं जानता हूँ उस पत्रिका के प्रकाशन में आपका भी बहुत योगदान रहा है, क्या उस पत्रिका के विषय पर आप कुछ प्रकाश डालेगें ?

अमीन सयानी : दरअसल बात कुछ ऐसी थी कि मेरा पूरा परिवार आजादी के आन्दोलन में पूरी तरह से जुडा हुआ था और गाँधी जी का हमारे परिवार पर गहरा प्रभाव था बस आप यूँ समझ लें कि हम सभी उन दिनों गाँधी जी की सरपरस्ती में पले-बढ़े थे। हमारे परिवार के कई लोग गाँधी जी के बहुत करीब थे। उन दिनों हमारी अम्मा जिनका नाम कुल्सुम था वह शिक्षा-जगत से जुडी हुईं थीं खास तौर से उन्होंने प्रौढशिक्षा के क्षेत्र में बहुत काम किया था। वह गाँधी जी की शिष्या भी थीं इसलिए समाज-सेवा के कार्य में उनकी बहुत मदद करती थीं। 1940 के दौरान गाँधी जी ने हमारी माता से कहा कि बेटी कुल्सुम तुम एक पत्रिका शुरू करो जिसकी विशेषता यह हो कि वह तीन अलग-अलग लिपियों में प्रकाशित हो पहली देवनागरी जो हिन्दी और मराठी की लिपि होगी, दूसरी गुजराती क्योंकि उन दिनों गुजरात और महाराष्ट्र एक ही था और तीसरी पत्रिका उर्दू में प्रकाशित हो। गाँधी जी ने एक बात खास तौर से कही कि इन तमाम लिपियों में जो पत्रिका प्रकाशित हो उसकी भाषा बहुत सरल, आम बोल-चाल की जबान होनी चाहिए। न ही उसमे क्लिष्ट हिन्दी के शब्द हों और न ही दकीक उर्दु के लफ्जों का इस्तेमाल हो। गाँधी जी के सुझाव पर माता जी ने उस पत्रिका को निकालना शुरू किया और उसका संपादन व प्रकाशन हमारे घर से होने लगा। बाद में तीनों लिपियों के टाईप आ जाने पर वह पत्रिका हमारे घर पर ही छपने लगी। उस पत्रिका का नाम रखा गया ''रहबर'' यानि मार्ग बताने वाला गाईड। मेरा जन्म 1932 में हुआ था इसलिए जिन दिनों इस पत्रिका की शुरूआत हुई थी तब मैं सिर्फ आठ वर्ष का था। तीनों लिपियाँ मुझे थोडी बहुत आती थीं, गुजराती का विद्यार्थी होने के कारण हिन्दी के भी थोडा बहुत करीब था। घर में कुरान शरीफ पढाने के लिए मौलवी साहब आते थे इसलिए अरबी पढ़ने के कारण उर्दू भी पढ़लेता था और स्कूल में थोड़ी बहुत फारसी भी पढ़चुका था। पत्रिका घर से ही प्रकाशित होती थी इसलिए मैंने इस पत्रिका के लिए पियुन की तरह काम करना शुरू किया। डाक से भेजी जाने वाली प्रतियों के पते रजिस्टर में दर्ज करके रखता और पोस्ट करने के समय वह पते काटकर चिपकाने का काम करने लगा। जब तीनों लिपियों को मैं अच्छी तरह समझने लगा तब मैंने प्रूफ-करेक्शन में भी अपनी टाँग अडाना शुरू करदी और धीरे-धीरे पूरी तरह से प्रूफ-करेक्शन करने लगा। प्रूफ-रीडिंग के दौरान प्रकाशन के लिए आने वाले आर्टिकल व अन्य रचनाओं को पढनें में मुझे धीरे-धीरे रस का अनुभव होने लगा। बहुत अच्छी-अच्छी रचनाएँ छपने के लिए आती थी, कई नामी साहित्यकार अपनी रचनाएँ भेजते थे। मुझे एक नाम याद है विश्वंभरनाथ पान्डे वह कई भाषाओं के जानकार थे उनकी रचनाएँ भी छपती थीं बाद में वह उड़ीसा के गवर्नर भी रहे। पत्रिका में स्तंभ के अलावा अलग-अलग कॉलम होते थे जैसे उर्दू में 'आसान उर्दू शायरी'और हिन्दी में 'सरल हिन्दी कविताएँ' वह भी मैं पढ़ने लगा और उसमें भी मुझे रस का अनुभव होने लगा। संगीत का शौक भी था इसलिए रिकार्ड लगाकर गाने भी सुनता था खास तौर से सहगल और पंकज मलिक के गाने मुझे बहुत पसन्द थे। कुछ समय बाद मैं पत्रिका के लिए अँग्रेजी साहित्य की अच्छी-अच्छी रचनाओं को चुनकर सरल हिन्दी भाषा में अनुवाद करने लगा। रहबर के जो संपादक थे उनका नाम था मुगनी अब्बासी, वह हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं में विद्वान थे, उनसे भी मुझे बहुत कुछ सीखने को मिला। कुछ दिनों बाद मेरे अनुवाद देखकर वह कहनें लगे 'अब धीरे-धीरे तुम लाईन पर आ रहे हो।' इस तरह लिखित रूप में मुझे हिन्दुस्तानी भाषा का अच्छी तरह ज्ञान हो गया था पर मेरी बोल-चाल की भाषा में तब भी गुजराती और अँगेजी का मिश्रण झलकता था। लिखना मुझे अच्छी तरह आ गया था इसलिए यहीं से सिलसिला चल पडा, परन्तु भाषा के

परिजनों के साथ किशोर अमीन सयानी

अभिनेता धर्मेन्द्र के साथ सयानी जी।

महासागर में कभी गोता नहीं लगा पाया। बस यूँ समझ लीजिए कि मैं एक नौसिखिये तैराक की तरह किनारे-किनारे भटकता रहा परन्तु सीखने का सिलसिला मेरा कभी खत्म नहीं हुआ। उस दौर में जितना मुझे रहबर से सीखने को मिला उतना ही फिल्मी गीतों के माध्यम से बहुत कुछ सीखा क्यों कि उस जमाने के जो फिल्मी गीतकार थे वह बहुत उच्च स्तर की भाषा का उपयोग करते थे उनकी शायरी में दम होता था। उस दौर के फिल्मी गीतों में साहित्य, दर्शन, प्रेम और संस्कार का जो मिला जुला रूप होता था वह भारत की समस्त परंपराओं का ही प्रतीक था।

बचपन से ही उस पत्रिका के प्रकाशन में, आप जो सहयोग दे रहे थे, उसकी प्रेरणा आपको कहाँ से मिली थी?

दरअसल उन दिनों हमारी अम्मा हमेशा किसी न किसी सामाजिक कार्य में व्यस्त रहती थीं। वह गाँधी जी की शिष्या थीं, ऑल इंडिया वुमन कॉन्फ्रेंस की वाइस प्रेसिडेंट थीं, हिन्दुस्तानी प्रचार सभा जिसे गाँधी जी ने शुरू किया था उसकी वाइस प्रेसिडेंट थीं और बम्बई शहर समाज शिक्षण समिति की भी वाइस प्रेसिडेंट थीं। वह पण्डित नेहरू की मित्र थीं इसलिए उन्हें कई बार पण्डित जी के स्थान पर उनका प्रतिनिधि बनकर विदेश यात्राओं पर भी जाना होता था। चीन व अन्य देशों में हमारी माता जी ने जाकर यह संदेश दिया कि भारत एक ऐसा देश है जहाँ सभी संस्कृतियों का संगम है, जहाँ समस्त धर्मों का व उनकी परम्पराओं का मिश्रण है, भारत एक ऐसी पवित्र धरती है जहाँ मित्रता के द्वार सभी के लिए हमेशा खुले हैं। अपनी अम्मा से प्रेरित होकर मुझमें भी अपने राष्ट्र के प्रति जो हमारे कर्तव्य हैं उसपर चलने की भावना उत्पन्न हुई थी इसीलिए बचपन से ही आगे बढ़कर मेहनत करनें से मैं कभी पीछे नहीं हटा।

मेरा यह मानना है कि आपके बाद लगभग मेरी पीढ़ी तक राष्ट्र के प्रति कुछ करने की भावना लोगों में समर्पण की हद तक नजर आती थी परन्तु आज के नौजवानों में ऐसे उदाहरण देखने को नहीं मिलते, आप इस बात से कितना सहमत हैं ?

जी हाँ, यह परिवर्तन सिर्फ भारत में ही नहीं पूरी दुनिया में आया है। आज हर कोई निन्यानवे के फेर में लगा हुआ है, इसी कारण आज कोई सीधे मार्ग पर चलना नहीं चाहता। इनसानियत और इन्साफ का आज कोई पक्ष नहीं लेता, हर व्यक्ति अपनी जेब गरम करनें में लगा हुआ है। भ्रष्टाचार इतना अधिक फैल चुका है कि आज लोग इमान्दारी से पैसा कमाने की सोच भी नहीं सकते। मुझ जैसे गाँधीवादी विचारों पर चलने वाले सीधे-सादे लोगो को ही अपनी इमान्दारी की कीमत चुकाना पडती है। हम झूठ नहीं बोलते, चोरी नहीं करते इसलिए इस महंगाई के दौर में भी इमान्दारी से टेक्स चुकाते-चुकाते हमारी नाक में दम आ गया है। यूँ समझ लीजिए कि हमारी पूरी संस्कृति बिगड़ गई है और ऐसा क्यों हुआ इस पर मैंने एक दिन बहुत सोच-समझकर विचार किया और इस नतीजे पर पहुँचा कि हमारे देश की सबसे बडी बीमारी है स्वच्छ, सरल, संचार का न होना। न सिर्फ टेक्सेशन के मामले बल्कि हर क्षेत्र में हमारा संचार उलझ गया है, बिगड़ गया है और सड़ गया है। हमारे नेताओं ने, हमारी सरकार ने, व्यापारियों ने और अन्य संस्थाओं ने अनजाने में कह लें या जान बूझकर हमारा संचार हर क्षेत्र में बिगाड़ दिया है। आज इस गलत संचार के कारण हमें पता ही नहीं चलता कि हम अपनी जान को खतरे में डाले बिना, या बिना जुर्माना भरे, या बिना रिश्वत दिए ऐसा कोई मार्ग है जिसपर सरलता से चल सकें?

जिन दिनों आप ब्रॉडकास्टिंग के क्षेत्र से जुडे थे उन दिनों रेडियो पर बोलने की एक समान शैली हुआ करती थी और.....

(प्रश्न पूर्ण सुने बिना ही अमीन साहब ने मेरी बात को काटकर पहले अपनी बात मेरे समक्ष रखी।)

देखिए, आप अपना यह सवाल आगे बढ़ाएँ उससे पहले मैं एक बात स्पष्ट कर दूँ। ऑल इंडिया रेडियो पर उस जमानें में एनाउंसर बहुत ही उच्च कोटि के हुआ करते थे। उन दिनों ऑल इंडिया रेडियो में भाग लेने के लिए भारत के सब से बडे साहित्यकार, लेखक व वक्ता हिस्सा लेते थे। अंग्रेजी में भी कार्यक्रमों को प्रस्तुत करनें वाले बहुत अच्छे उदघोषक थे। ऑल इंडिया रेडियो के प्रमुख दो भाई थे बुखारी ब्रदर्स जो हिन्दुस्तान के बटवारे के बाद पाकिस्तान चले गए । बाद में बड़े भाई पाकिस्तान जाकर यु.एन.ए. के रिप्रेजेन्टेटिव बन गए और छोटे भाई जेड.ए.बुखारी पाकिस्तान रेडियो और वहाँ के टेलीविजन के हेड बन गए थे। वह दोनों लेखक होने के साथ-साथ प्रस्तुतकर्ता भी जबर्दस्त थे, जेड.ए.बुखारी की तो आवाज भी गरजती हुई थी। मुंशी प्रेमचंद, सादत हसन मन्टो, कृष्ण चन्दर जैसे और भी कई काबिल लोग ऑल इंडिया रेडियो के साथ जुडे हुए थे और इन सब के लिखने और बोलने की शैली भी अलग-अलग थी लेकिन एक बात का सभी को पालन करना पडता था वह यह कि बिना स्क्रिप्ट के एक शब्द भी कोई अपनी तरफ से नहीं बोलता था, बस यही बात सभी में समान हुआ करती थी। यह नियम इसलिए अनिवार्य था कि कहीं अधिक बोलने के चक्कर में उदघोषक या वक्ता कोई ऐसी बात न करदे जो सरकार की नीति के विरूद्ध हो। समय-सीमा को भी दृष्टिगत रखते हुए स्क्रिप्ट बहुत ही नपे-तुले अंदाज में लिखी जाती थी। लिखी हुई स्क्रिप्ट को किस तरह से रेडियो पर पढ़ा जाए यह अभ्यास ट्रेनिंग के दौरान उन दिनों उदघोषक को दिया जाता था। इस बात का भी विशेष ध्यान रखा जाता था कि बोलने का अंदाज इतना सहज हो जिससे श्रोता को ऐसा कहीं भी न लगे कि उदघोषक या वक्ता स्क्रिप्ट पढ़कर बोल रहा है। समाचार पढ़नें का अंदाज एक अलग होता था लेकिन अन्य कार्यक्रमों में उद्घोषक को स्क्रिप्ट पढ़ते समय सहजता बनाए रखना होती थी। एक ही स्टाईल में बोलने का चलन ऑल इंडिया रेडियो पर काफी समय बाद आया। हाँ तो अब आप पूछिये आपका पूरा सवाल क्या था।

मेरा सवाल यह था कि उस दौर में रेडियो पर अन्य लोगों के बोलनें की जो शैली रही थी उससे बिल्कुल अलग हटकर आपने अपनी एक नई शैली विकसित की, जिसे श्रोताओं ने पसंद भी किया लेकिन शुरआती दौर में आपके समकालीन रेडियो उदघोषक साथियों को यह बात कुछ अजीब नहीं लगी कि परम्परा से हटकर अमीन सयानी यह किस तरह बोलने का अजीब अंदाज लाए हैं। क्या उस समय आपके बोलने की इस नई शैली को लोगों ने बहस का मुद्दा नहीं बनाया ?

बिल्कुल, बहस का मुद्दा बना पर उससे पहले मैं आपको कुछ बताना चाहूँगा। उन दिनों ब्रॉडकास्टिंग के क्षेत्र में ऑल इंडिया रेडियो विश्व में बी.बी.सी. की टक्कर का एक बेहतरीन ऑर्गनाइजेशन था, हर बात उसमें लाजवाब थी सब कुछ उच्च कोटी का था। फिर साहब हुआ यह कि युनियन मिनिस्टर ऑफ इन्फॉर्मेशन एण्ड ब्रॉडकास्टिंग में एक नए मंत्री आए जिनका नाम था डॉ बी.वी.केस्कर। उनको पता नहीं क्या सूझा, उन्होंने दो चार इतने गलत कदम उठाए कि ऑल इंडिया रेडियो की शोहरत नम्बर एक से गिरकर बिल्कुल शून्य हो गई। सबसे पहले तो उन्होंने ऑल इंडिया रेडियो पर बजने वाले फिल्मी गीतों पर पाबंदी लगा दी। फिल्मी गीतों से तीन लाभ होते थे। पहला लोगों का घर बैठे मनोरंजन होता था, दूसरा सरल हिन्दुस्तानी भाषा का प्रचार सबसे अधिक इसी माध्यम से होता था, तीसरा भारत की एकता को बनाए रखने का भी माध्यम था। गीतों को सुनकर उत्तर से दक्षिण, पूरब से पश्चिम तक श्रोता एक भाषा से जुड़े रहते थे। केस्कर द्वारा फिल्मी गीतों पर प्रतिबन्ध लगाने से ऑल इंडिया रेडियो बरबाद हो गया था। दूसरा गलत निर्णय केस्कर का यह था कि रेडियो पर कोई भी उदघोषक उतार-चढ़ाव के लहजे में नहीं बोलेगा। उदघोषक के लिये मैं या हम शब्द बोलने की भी अनुमति नहीं थी और न ही वह प्रसन्नता की मुद्रा में बोल सकता था। इस प्रकार के अजीब प्रतिबन्ध के कारण ऑल इंडिया रेडियो के कार्यक्रमों को सुनकर ऐसा लगता था जैसे किसी नेता की मृत्यु हो गई हो और रेडियो पर उसका मातम चल रहा है। जब ऑल इंडिया रेडियो से श्रोता ऊब गए ऐसे में रेडियो सिलोन उभर कर आया। शुरूआती दौर में रेडियो सिलोन पर उद्घोषक नहीं होते थे सिर्फ लगातार फिल्मी गीत बजते थे। उस जमाने में एक और छोटा रेडियो स्टेशन भी था रेडियो गोवा पर रेडियो सिलोन का प्रसारण बहुत दूर तक लोगों को सुनाई देता था। ऐशिया के साथ-साथ ईस्ट अफ्रीका और साउथ अफ्रीका तक रेडियो सिलोन का प्रसारण पहुँचता था। केस्कर के गलत निर्णय के कारण ऑल इंडिया रेडियो के सभी श्रोता दो, तीन महिने में ही रेडियो सिलोन की ओर आकर्षित हो गए। कुछ समय बाद भारत में भी इसकी एजेंसी शुरू हो गई और उसके बाद मैं भी इससे जुड़ गया। मेरे बड़े भाई हमीद सयानी जो अंग्रेजी ब्रॉडकास्टिंग में मेरे गुरू थे, उनको रेडियो सिलोन की भारतीय एजेंसी में कार्यक्रमों का निर्देशक बना दिया गया था इसलिये मैं रेडियो सिलोन पर काम की तलाश में उनके पास पहुँचा।

इससे पहले मुझे ऑल इंडिया रेडियो से यह कहकर रिजेक्ट कर दिया गया था कि तुम्हारी हिन्दी अच्छी नहीं है, तुम जब हिन्दी बोलते हो तो उसमें अंग्रेजी और गुजराती का लेहजा सुनाई देता है। उन दिनों देश आजाद हो चुका था और रेडियो सिलोन पर बहुत से हिन्दी कार्यक्रम भी शुरू होने जा रहे थे इसीलिये मैं आजाद हिन्द का नया नौजवान बहुत उत्साह के साथ अपने भाई के पास काम की तलाश में पहुँचा था। मेरे बड़े भाई हमीद सयानी जी ने मुझसे कहा- देखो भाई, यह मैं भी जानता हूँ और तुम भी जानते हो कि हिन्दी और उर्दू तुमको ठीक से आती नहीं है। मेरे पास बहुत अच्छे हिन्दी बोलने वाले उद्घोषक आ गए हैं। बालगोविन्द श्रीवास्तव, मनमोहन कृष्ण आदि अभी काम शुरू करने जा रहे हैं। तुम इनका मुकाबला नहीं कर सकते इसलिये पहले अपनी भाषा पर अच्छी तरह काम करो फिर विचार करेंगे। पहले ऑल इंडिया रेडियो और फिर रेडियो सिलोन पर मेरे भाई ने ही मुझे रिजेक्ट कर दिया तो मेरा दिल टूट गया। मैंनें अपने भाई से निवेदन किया कि- ठीक है आप काम मत दो पर मुझे हिन्दी के कार्यक्रमों की जहाँ रिकार्डिंग होती है वहाँ बैठकर सुनने की अनुमति तो दे दो। कुछ समय बाद मुझे एक अवसर मिला एक कार्यक्रम था 'ओवलटीन फुल्वारी' जिसमें नये-नये गायक आकर गाते थे। उसके निर्माता बालगोविंद श्रीवास्तव थे और कार्यक्रम का संचालन मनमोहन कृष्ण करते थे। आगे चलकर उसी कार्यक्रम में मुझे बोलने का अवसर मिला। मैं एक जोशीला नौजवान था, थोडा बहुत नाटकीय भी था और जोर-जोर से बोलने की आदत थी इसलिये शुरूआती दौर में मेरे बोलने का लेहजा सुनकर बालगोविंद जी ने मुझसे कहा कि- देखो एक तो तुम्हारी हिन्दी अच्छी नहीं है उपर से तुम अधिक गति से बोलते हो वह भी चीख-चीख के इसलिये स्क्रिप्ट को धीरे-धीरे पढ़कर इनसानों की तरह बोलो, रेडियो पर जोर से चिल्लाने की जरूरत नहीं है। इस प्रकार धीरे-धीरे मैं सुधार करता गया और मुझे छोटा-मोटा काम मिलने लगा। फिर आया गीत-माला के संचालन का अवसर। रेडियो सिलोन पर 'गीत माला' पहले 'हिट परेड' के नाम से अंग्रेजी में संचालित किया जाता था जिसमें सौ रूपये का जेकपॉट भी होता था और उस प्रतियोगिता में हर सप्ताह लगभग तीन सौ, चार सौ पत्र भी आते थे। लोग चाहते थे कि उस कार्यक्रम को हिन्दी में भी शुरू किया जाए, हिन्दी के कार्यक्रम में यदि तीस-चालीस पत्र भी आ जाएँ तो पर्याप्त होगा। कार्यक्रम की जिम्मेदारी किसी को इसी शर्त पर दी जानी थी कि जो भी इस कार्यक्रम को करेगा उसे स्क्रिप्ट भी लिखना होगी, कार्यक्रम को प्रोडयूस भी करना होगा, उसका संचालन भी और जो तीस-चालीस पत्र आयेंगे उनको भी पढ़ना होगा। जो भी इसकी जवाबदारी को लेगा उसे इस साप्ताहिक कार्यक्रम के 25 रूपये मिलेंगे। मेहनताना बहुत कम था इस कारण कोई भी उस कार्यक्रम को लेने के लिये आगे नहीं आया पर मेरे लिये यह बड़ी बात थी क्यों कि इससे पहले मुझे मेहनताने में सिर्फ ओवलटिन का एक डिब्बा मिलता था और यहाँ तो मुझे सप्ताह भर में 25 रूपये और महिने में सौ रूपये मिल रहे थे इसलिये मैंनें गीत-माला का कार्यक्रम ले लिया। जहाँ तीस-चालीस पत्र की अपेक्षा थी वहीं पहले ही कार्यक्रम में लगभग नौ हजार पत्र आ गए और इस प्रकार गीत-माला की सफलता के साथ-साथ मैं भी चल पडा। कुछ ही सप्ताह में जब आने वाले पत्रों की संख्या 65 हजार तक पहुँच गई तब गीत-माला में प्रतियोगिता को बंद करना पडा और उसे हिट-परेड का रूप दे दिया गया जिसमें सीढ़ी के पायदान पर सफल गीत चढ़ने लगे। कार्यक्रम की सफलता का अनुमान आप इस बात से लगा सकते हैं कि पचास के दशक के अंत तक पहुँचते-पहुँचते संपूर्ण ऐशिया के साथ-साथ ईस्ट और साउथ अफ्रीका में लगभग बीस करोड़ लोग इस कार्यक्रम को सुनने लगे। जिस समय यह कार्यक्रम शुरू होता लोग सारे काम छोड़कर रेडियो से चिपक जाते थे। अब आता हूँ मैं आपके सवाल पर। प्रतिबंध के कारण, जिन दिनों ऑल इंडिया रेडियो से श्रोता ऊब गए थे उन्हीं दिनों रेडियो

राष्ट्रपति श्रीमती पाटिल के हाथों सम्मानित होते हुए।

सिलोन के लिये हमसे कहा गया कि- श्रोताओं की बोरियत दूर करो और धूम मचा दो। बस फिर क्या था मैंनें कुछ जरूरत से ज्यादा ही धूम मचाना शुरू कर दिया और श्रोताओं ने मुझे पसंद भी किया। उन दिनों कार्यक्रम को प्रस्तुत करने की मेरी शैली थोड़ी ऊटपटांग हुआ करती थी पर मैं जो भी करता था वह नाप-तोलकर करता था और कभी भी स्क्रिप्ट के दायरे से बाहर नहीं आता था। जो भी स्क्रिप्ट लिखता या बोलता था उसे शालीनता से प्रस्तुत करता था। अब साहब मैं आपको बताता हूँ कि उन दिनों जो भाषा के जानकार थे उनको मेरा यह अंदाज अखरता भी था। मेरी शैली पर ऐतराज करने वाले किसी दूसरे व्यक्ति की क्या बात करूँ सबसे पहले अपनी पत्नी की ही बात आपके सामने रखता हूँ। मेरी पत्नी का नाम रमा मट्टू था वह कश्मीरी थीं। हिन्दी-उर्दू दोनों भाषाओं पर उनका अच्छा नियन्त्रण था। 1958 में मेरा विवाह हुआ था। विवाह के लगभग एक वर्ष बाद मेरे साले साहब राज मट्टू दिल्ली से बम्बई आए। एक दिन रमा घर में नहीं थी और हम दोनों आपस में गपशप करने लगे। साले साहब ने मुझे बताया कि - देखो अमीन शादी से दो साल पहले रमा ने पहली बार तुम्हारी आवाज रेडियो पर सुनी थी। हम दिल्ली में थे और गलती से रेडियो पर तुम्हारा गीतमाला कार्यक्रम लग गया। रमा ने लगभग दो तीन मिनट तक तुम्हारी आवाज सुनी और फिर मेरी तरफ मुड़कर बोली कि यह रेडियो पर कौन बकवास कर रहा है, कोई उससे जाकर कहे कि चुप रहो और बोलना बंद करो। साले साहब की यह बात सुनकर मैं चौंक गया। मुझे आश्चर्य हुआ कि विवाह से पूर्व मेरे विषय में, मेरी पत्नी के ऐसे विचार थे। बाद में मैंनें स्वयं विचार किया तब मुझे लगा कि मेरी पत्नी सही कह रही थी आखिर मैं इतना ऊटपटांग किसी रेडियो-मदारी की तरह क्यों बोलता हूँ। रेडियो का श्रोता तो उसे पास बैठकर सुनता है फिर मैं क्यों इतना चिल्ला-चिल्ला कर बोलता हूँ। बात मुझे सही लगी थी इसलिये मैंनें धीरे-धीरे अपनी शैली को सुधारा पर उससे पहले मैं छः-सात वर्षों तक उस प्रकार से बोल चुका था। अपने बोलने के अन्दाज में सुधार करने के बाद श्रोता मुझे और पसंद करने लगे और मुझे सुनकर उनको अपनेपन का आभास होने लगा जैसे रेडियो के माध्यम कोई उनसे सीधे बात कर रहा हो।

मुझे याद है उस कार्यक्रम के लोग दीवाने हुआ करते थे। कार्यक्रम में आपने श्रोता के साथ जो अपनापन बनाए रखा था, क्या यही विशेषता गीतमाला की सफलता का कारण थी ?

गीतमाला की सफलता में फिल्मी गीतों का और कार्यक्रम के फॉर्मेट का भी बहुत बड़ा योगदान था। श्रोता से अपनापन कैसे बनाया जाए यह बात मैंनें अपने बड़े भाई से सीखी थी। वह मुझे बताते थे कि रेडियो पर इस प्रकार से बोलो जैसे किसी एक आदमी से बात कर रहे हो। फिर चाहे तुम करोड़ों से बात करो पर हर सुनने वाले को लगना चाहिये जैसे उदघोषक सिर्फ उसी से बात कर रहा है। उन्होंने मुझे यह भी बताया था कि रेडियो पर हर क्षण बहुत लम्बा होता है इसलिये उस क्षण को कभी व्यर्थ न जाने दो। रेडियो पर कुछ भी व्यर्थ बोलने में, या बात दोहराने में न आ जाए इसलिये स्क्रिप्ट के अनुसार ही बोलो। बडे भाई द्वारा सीखाई गई बातों का मैंनें ध्यान रखा और कार्यक्रम के माध्यम से श्रोताओं के दिल तक पहुँच गया। इसलिये अबतक मैंनें जितने भी कार्यक्रम प्रस्तुत किये हैं, वह स्क्रिप्ट लिखने के बाद ही किये हैं पर मेरा बोलने का अन्दाज ऐसा होता है कि सुनने वाले को कभी यह आभास ही नहीं हो पाता मैं स्क्रिप्ट पढ़कर बोल रहा हूँ। आज आपसे जो बातचीत कर रहा हूँ इसकी कोई स्क्रिप्ट नहीं है, बिना स्क्रिप्ट के हम सहज मुद्रा में बात कर रहे हैं।

अब गीतमाला का जिक्र चल रहा है तो मैं इससे जुड़ी एक छोटी सी बात और पूछना चाहूँगा। अधिकतर लोग संबोधन में कहते हैं भाइयो और बहनो पर आप कहते हैं 'बहनो और भाईयो' क्या इसके पीछे भी कोई तर्क है?

दरअसल मैं अंग्रेजी भाषा में पढ़ा-लिखा था और उसमें जब संबोधित करते हुए कहा जाता है 'ल्हें डैंहूतर्सेह यानि स्त्री को प्राथमिकता दी जाती है इसलिये मैंनें सोचा हिन्दी में भी भाइयो और बहनो के स्थान पर बहनो और भाइयो बोल सकते हैं। आपकी बात पर मुझे याद आया जब गीतमाला कार्यक्रम बहुत प्रसिद्ध था उन दिनों फिल्म से जुड़े अधिकतर लोग इस कार्यक्रम को सुनते थे। एक बार गीतकार मजरूह सुल्तानपुरी ने भी एक ऐसी ही बात को लेकर मुझे टोंका था। कार्यक्रम में गीत सीढ़ी के पायदानों पर चढ़ते-उतरते थे। मजरूह साहब को शिकायत थी कि मैंनें सीढ़ी और पायदान के मध्य बोलने में स्त्रीलिंग और पुर्लिंग का ध्यान नहीं रखा। मजरूह साहब अपनी जगह सही थे पर जब मैंनें उन्हें अपना नजरिया बताया तब वह बोले कि ठीक है अब जो चल गया है उसे चलने दो।

कार्यक्रम में गीतों को सफलता का क्रम देकर आप सरताज गीत तक पहुँचाते थे और लोग उसी गीत को लोकप्रिय गीत मान लेते थे।, चयन की उस पद्धति पर उन संगीतकारों ने कभी ऐतराज किया, जिनके गीत आपके गीतमाला में सफल नहीं होते थे ?

चलिये आपके सवाल का जवाब मैं संक्षेप में देता हूँ। 60 के दशक में एक समय ऐसा आया जब शंकर-जयकिशन, कल्याणजी-आनंदजी, लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल और आर.डी.बर्मन इन चार संगीतकारों ने फिल्म संगीत के व्यवसाय पर कब्जा कर लिया। इस कारण इनसे पहले के जो वरिष्ठ संगीतकार थे उनको काम मिलना बंद हो गया। ऐसे में एक डेलिगेशन लेकर बड़े संगीतकार मेरे पास आए और कहा- आपका यह प्रोग्राम बकवास है, सब झूठ है। आपके इस प्रोग्राम से हमको बहुत नुकसान हो रहा है, इसलिये इसको बंद कर दीजिये। उनकी बात सुनकर मैंनें उनके सामने वह सारे दस्तावेज रखे जिस आधार पर हम गीतों का चयन करते थे। समस्त प्रक्रिया को जानने के बाद वह इस बात को मान गए कि हम सही थे। उसी दौरान म्युजिक डायरेक्टर ऐसोसियेशन का पहला म्युजिक-अवार्ड फंक्शन हुआ। उस कार्यक्रम में मुख्य अतिथि थे पृथ्वीराज कपूर विशेष अतिथि थे राज कपूर और कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे थे सिने म्युजिक डायरेक्टर ऐसोसियेशन के अध्यक्ष सी.रामचन्द्र। मैं भी मंच पर उस कार्यक्रम का संचालन कर रहा था। कार्यक्रम में सी.रामचन्द्र जी ने कहा कि- यह जो रेडियो पर गीतों का प्रचार कर उनको लोकप्रिय बनाया जाता है, यह सब बकवास है।ß सी.रामचन्द्र जी की यह बात सुनकर उस समय मैंनें उनको कोई जवाब नहीं दिया, मैं चुप रहा। आज सी.रामचन्द्र को गुजरे हुए काफी अरसा बीत गया है। जब मैंनें गीतमाला पर आधारित अलग-अलग वाल्यूम निकाले उसमें मैंनें उनकी बात का वर्षों बाद जवाब दिया। अन्ना साहब की आत्मा से मुखातिब होते हुए मैंनें एक वाल्यूम में कहा है- अन्ना साहब, मैं आपकी आत्मा से एक बात कहना चाहूँगा कि डेमोक्रेटिक इलेक्शन में भी यह जरूरी नहीं है कि जो सबसे अच्छा उम्मीदवार हो वही जीतकर आए। इसी तरह यहाँ भी जरूरी नहीं कि लोकप्रिय गीत वही हो जो अच्छा हो। अच्छा भी अच्छा है और लोकप्रिय भी अच्छा है। मेरी दृष्टि में, 60 के दशक में जो सबसे अच्छा गीत था वह आप ही का था। जिसे प्रदीप ने लिखा था और धुन आपने बनाई थी। वह अच्छा गीत तो फिल्मों में आया ही नहीं। वह गीत था- ऐ मेरे वतन के लोगो, जरा आँख में भर लो पानी....।

भारतीय सिनेमा का सुनहरा दौर आपने देखा है और उस दौर में आपने बेशुमार लोगों के रेडियो पर इंटरव्यू भी किये। इंटरव्यू के दौरान वह ऐसे कौन लोग थे जिनसे आप सबसे अधिक प्रभावित हुए ?

ऐसे बहुत से लोग हैं जिन लोगों ने मुझे प्रभावित किया। किशोर कुमार मेरे बहुत अच्छे परिचित थे। हालांकि एक समय उन्होंने मुझे तंग भी बहुत किया था उसके बावजूद उन्होंने दो रेडियो प्रोग्राम मेरे लिये किये। किशोर कुमार के साथ जैसा इंटरव्यू मैंनें किया था, वैसा इंटरव्यू मैंने अबतक नहीं किया, वह इंटरव्यू गजब का था। गुलजार साहब से भी मैं बहुत प्रभावित हूँ। बहुत अच्छा बोलते हैं, उनकी बहुत ऊँची सोच है, बहुत सी भाषाओं के जानकार हैं। वह गीत भी लिखते हैं, संवाद भी लिखते हैं और फिल्म निर्देशन भी बहुत अच्छा करते हैं। गुलजार साहब के लेखन में बहुत गहराई है।

समावर्तन ने भी एक विशेषांक गुलजार साहब पर निकाला है।

अरे वाह, तब तो आप समावर्तन के उस अंक की प्रति मुझे भी जरूर भेजिये। अमिताभ बच्चन से भी मैं बहुत प्रभावित रहा हूँ। उनको जब पहली बार मैंनें स्क्रीन पर देखा था तब से ही मैं उनका प्रशंसक हो गया था। हालांकि फिल्मों में आने से पहले वह मुझसे मिलने दो,तीन बार मेरे दफ्तर में आए थे पर मुझसे उनकी मुलाकात नहीं हो पाई थी।

अमिताभ बच्चन ने अपने स्ट्रगल के दौर में रेडियो पर कुछ विज्ञापन भी किये थे।

मेरे साथ नहीं किये। मुझसे जब वह मिले तबतक तो वह स्टार बन चुके थे और जब मुझे यह बात पता चली की वह कभी मुझसे मिलने आए थे और मैं उनसे मिल नहीं पाया तब मैं अपना सिर पकड कर बैठ गया। सोचने लगा कि यदि उस समय अमिताभ की मुझसे मुलाकात हो जाती तब मैं उनको तुरंत काम दे देता और वह रेडियो पर भी इतने प्रसिद्ध हो जाते जिससे मेरी तो छुट्टी हो जाती। चलो अच्छा ही हुआ मैं उनसे मिल नहीं पाया यदि मिल जाता तब वह रेडियो तक ही सीमित रह जाते और दर्शक स्टार ऑफ द मिलेनियम से वंचित रह जाते। मुझे हमेशा इस बात का मलाल रहता था कि किसी समय ऑल इंडिया रेडियो ने मुझे रिजेक्ट कर दिया था। जब अमिताभ बच्चन ने मुझे बताया कि एक समय उनको भी हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में ऑल इंडिया रेडियो ने रिजेक्ट कर दिया था तब जाकर मुझे लगा कि ऑल इंडिया रेडियो ने तो आज के स्टार ऑफ द मिलेनियम को भी नहीं बख्शा था। लता मंगेश्कर जी से भी मैं बहुत प्रभावित हूँ। वह मुझे हमेशा अमीन भाई कहकर संबोधित करती हैं पर मैं उनको दीदी नहीं कहता क्योंकि वह हमेशा मुझसे उम्र में दस साल छोटी नजर आती हैं इसलिये उनको लता जी कहता हूँ। आशा भोसले भी मुझे अमीन भाई कहती हैं। लता जी और आशा दोनों गजब की आर्टिस्ट हैं, उन दोनों की मैं बहुत इज्जत करता हूँ। लता शबनम है तो आशा शोला है। संगीतकारों में मुझे तीन लोग बहुत प्रिय थे एस.डी.बर्मन, रोशन और मदन मोहन। रोशन और एस.डी.बर्मन दोनों ही मेरे भाई समान थे। यह दोनों मेरे बहुत करीब थे, इनके घर अक्सर मेरा आना-जाना होता रहता था और बहुत अपनापन था मगर अफसोस कि मैं कभी इन दोनों का इंटरव्यू नहीं कर पाया। मदन का इंटरव्यू मैंनें जरूर किया वह मेरे प्रिय संगीतकारों में से एक थे। वह फौज में रह चुके थे इसलिये उनका अन्दाज बिल्कुल फौजियों जैसा था। उनको जो भी कहना होता वह स्पष्ट कह देते थे। लता ने मुझे एक बार बताया था कि मदन मोहन जब उनके गाने से प्रसन्न हो जाते तब पास आकर, शाबाशी देने के लिये उनकी पीठ पर इतनी जोर से हाथ मारते थे कि वह हिलकर रह जातीं थीं। संगीतकार नौशाद से भी मैं बहुत प्रभावित हुआ था वह बोलते भी गजब के थे। नौशाद साहब से बहुत कुछ सीखने को भी मिलता था ख़ासकर तहजीब के बारे में। लोक और शास्त्रीय संगीत पर आधारित उनका कार्य लाजवाब था। नौशाद साहब की कुछ बातें मुझे हमेशा याद रहती हैं, वह कहा करते थे- हमारे जमाने का जो संगीत था वह मन को छूता था, आज धूमधाम वाला जो नए जमाने का संगीत है यह तन को छूता है। इस प्रकार वह आज के संगीत की बुराई किये बगैर दोनों के मध्य का अंतर बताते थे। आर.डी.बर्मन को मैंनें देखा कि वह एक अजीब से इनसान थे, वह नॉर्मल इनसान नहीं थे क्योंकि वह कभी स्थिर नहीं रहते थे, उनके हाथ पैर का कुछ न कुछ हिस्सा चलता ही रहता था। स्थिर मुद्रा में वह कभी बैठते ही नहीं थे उनको हमेशा मैंनें बेचैन देखा। अपनी उस बेचैनी में भी उन्होंने क्या कमाल का संगीत दिया है। भारतीय व पाश्चात्य दोनों ही शैलीयों में उन्होंने लाजवाब संगीत दिया है। मनोज कुमार मुझे इसलिये अच्छे लगे कि अभिनेता और लेखक होने के बाद जब वह निर्देशक बने तब उपकार, पूरब-पश्चिम, रोटी कपडा और मकान जैसी फिल्में बनाई जिसमें भारत की बात थी। धर्मेन्द्र का इंटरव्यू लेते समय मैं उनके जट यमला वाले अन्दाज से प्रभावित हुआ था। जया भादुड़ी को मैं शुरुआती दौर से ही जानता था जब वह फिल्म उद्योग में नई आईं थीं। जया बहुत ही सुलझे हुए विचारों की लडकी थी। जया हमेशा मेरी छोटी बहन की तरह रही है। जया की जब अमिताभ से शादी हुई तब से मैं दोनों के और भी

करीब हो गया। जया जब भी कुछ बोलती हैं वह बहुत ही सोच समझ कर बोलती हैं। तनुजा का चुलबुलापन मुझे अच्छा लगा वही चुलबुलापन उनकी बेटी काजोल में भी दिखा। चुलबुलापन और छेडछाड उनके व्यवहार में है पर उनके जीवन में एक गहराई और स्थिरता है। रणधीर कपूर जब बोलते थे तब बहुत ही तीव्र गति से बोलते थे उनकी शक्ल में मुझे उनके अब्बा राज कपूर नजर आते थे। राज कपूर को मैं तब से जानता था जब वह स्कूल में पढ़ते थे। मेरे बड़े भाई बहुत अच्छे वक्ता थे और जब वह स्कूल से होने जा रही एक प्रतियोगिता में गए तब वहाँ राज कपूर भी अपने स्कूल से वहाँ वक्ता के रूप में आए थे। उस प्रतियोगिता में मेरे बड़े भाई ने बहुत अच्छा भाषण दिया था लेकिन राज कपूर ने भाषण के दौरान जो अठखेलियाँ की थी उस आधार पर उनको प्रथम पुरस्कार दे दिया गया उपर से लोगों पर पहले से ही इस बात की भी धाक जमी थी कि वह तो पृथ्वीराज कपूर के बैटे हैं। इसलिये राज कपूर को मैं तब से जानता था। उनकी कई फिल्मों की पब्लिसिटी भी मैंनें की है।

इस दौरान क्या कभी आपने राज कपूर का इंटरव्यू किया ?

उनका इंटरव्यू मैं कभी नहीं कर पाया। जब मैंनें गीत माला के वॉल्यूम निकाले तब राज कपूर की आवाज मैंनें किसी दूसरे के इंटरव्यू में से लेकर उसमें डाली है। मेहमूद जब मेरे लिये एक कार्यक्रम प्रोड्यूस कर रहे थे उसमें वह राजकपूर को लेकर आए थे। उस कार्यक्रम का नाम था मेहमूद के मुँह से। वह कार्यक्रम चार ऐपिसोड के बाद ही बंद हो गया। उस कार्यक्रम का टेप कहाँ है यह मुझे याद ही नहीं आ रहा था। अभी कुछ दिन पहले ही मेरे एक रिकॉर्डिस्ट जॉन ने उस टेप को ढूँढ़निकाला। रणधीर कपूर ने भी एक रेडियो प्रोग्राम मेरे साथ किया था। नसीरूद्दीन शाह भी मुझे अच्छे लगे। नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा से उन्होंने प्रशिक्षण लिया है। उनके उस्ताद इब्राहिम अलकाजी मेरी भाभी की बहन के शौहर थे। मेरी भाभी एलेक पद्मसी की बहन थी और उनकी एक बहन का नाम था रोशन। मेरी भाभी का नाम जरीन था जिनको लोग जेरी भी कहते थे। रोशन की शादी इब्राहिम अलकाजी से हुई और दूसरी बहन जरीन की शादी मेरे बड़े भाई हमीद सयानी से हुई थी इसलिये मैं भी उन दिनों थियेटर ग्रुप से जुडा हुआ था। एक्टर होने के साथ-साथ नसीरूद्दीन शाह जब बोलते हैं तब शब्द और विचार का जो संगम गुलजार में है वही बात उनमें भी नजर आता है। शत्रुघ्न सिन्हा ने भी मुझे प्रभावित किया। शुरूआती दिनों में एक कार्यक्रम के दौरान हम दोनों के बीच ठन गई थी और दोनों ने एक दूसरे की खूब खिंचाई की फिर बाद में वह मेरे बहुत अच्छे दोस्त बन गए। हिन्दी साहित्य से संबधित दिल्ली की एक संस्था है, उस संस्था का नाम मुझे इस समय ठीक से याद नहीं आ रहा है। उस संस्था के लोगों ने मुझसे कहा कि हम इस वर्ष हिन्दी साहित्य रत्न का अवार्ड आपको देना चाहते हैं। तब मैंनें उनसे कहा कि मैं तो बम्बई वाला हूँ, हिन्दी साहित्य के बारे में कुछ नहीं जानता। वे बोले, हम इस बार यह अवार्ड ऐसे व्यक्ति को देना चाहते हैं जो दूसरी भाषाओं से होता हुआ हिन्दी की ओर आया और जिसने बाद में हिन्दी का प्रचार किया। उस अवार्ड फंक्शन में मुख्य अतिथि शत्रुघ्न सिन्हा थे और जब वह स्टेज पर आकर मेरे विषय में बोले तब तो उन्होंने गजब ही कर दिया। उस समय वह इतना अच्छा बोले कि मेरे दिल में उनके प्रति सम्मान और बढ़गया। वैसे बहुत से कलाकारों के इंटरव्यू मैंनें किये हैं और बहुत से लोगों ने प्रभावित भी किया है अब किस-किस का नाम लूँ।

आपने बहुत से गायकों का इंटरव्यू किया। क्या कभी आपने मोहम्मद रफी का भी इंटरव्यू किया ?

कैसे करता उनका इंटरव्यू, वह तो कुछ बोल ही नहीं पाते थे। बर्मन दा के गुजर जाने के बाद मैंनें एक बार रफी साहब के इंटरव्यू की कोशिश की थी पर वह कुछ बोल ही नहीं पाए। हर बात का जवाब बस वह हाँ न करके देते थे। जिन दिनों मैं बहुत व्यस्त चल रहा था और किसी कारण बम्बई के बाहर भी आना-जाना चल रहा था उन दिनों मेरे राईटर रियाज सैयद ने रफी साहब के पास जाकर कोशिश की और उनके सिर्फ दो, चार वाक्य ही रिकॉर्ड करके ला पाए जो बर्मन दा के लिये उन्होंने कहे थे। हाँ, मैं मेहमूद का जिक्र भी करना चाहूँगा। वह भी बहुत गजब के वक्ता थे। उनकी तमाम फिल्म की पब्लिसिटी का काम भी मैंनें किया है।

आपने तो मेहमूद की एक फिल्म में काम भी किया था।

हाँ छोटे नवाब में काम किया था।

शायद आपके जहन से उतर रहा है। वह फिल्म छोटे नवाब नहीं, भूत बंगला थी। उस फिल्म में आपके दृश्य के बाद ही तनुजा पर फिल्माया गया लता जी का एक मधुर गीत था- ओ मेरे प्यार आजा.....।

सॉरी, आप सही कह रहे हैं वह फिल्म भूत बँगला थी। मेहमूद जब भी अपनी फिल्म की पब्लिसिटी के लिये मेरे पास आते तो सारा दिन उनके साथ गुजर जाता था। मैं उनसे कहता कि -'मेहमूद भाई आपका काम 'जल्दी निपटा लें, मुझे और भी काम करनें हैं।' तब वह कहते जल्दी क्या है, आराम से करेंगे। वह खाते जबरदस्त थे इसलिये आठ-दस प्लेट सेंडविच भी मँगवा लेते थे और यह सिलसिला चलता रहता था। इसी तरह हम बातों-बातों में पब्लिसिटी के लिये प्रोग्राम भी तैयार कर लेते थे।

क्या वह तमाम सिलसिले आपके इसी दफ्तर से चलते थे ?

इसी बिल्डिंग का यह पूरा फ्लोर उन दिनों रेडियो सिलोन की ऐजेंसी का दफ्तर हुआ करता था, जिसमें तीन स्टूडियो थे साथ ही प्रोड्युसर और डायरेक्टर के बैठने के अलग-अलग कक्ष थे। जब यहाँ पर रेडियो सिलोन की ऐजेंसी बंद हो गई तब मैंनें इसी फ्लोर का यह छोटा सा हिस्सा खरीद लिया और इसमें अपना स्टूडियो बना लिया।

आजकल पहले से अधिक फिल्में बनती हैं, कब आतीं हैं, कब चली जातीं हैं पता नहीं चलता। आज के अभिनेता, गायक, संगीतकार और गीतकार भी ऐसे ही हैं, कब आते हैं, कब चले जाते हैं। इस नए दौर में फिल्म और कलाकारों का प्रभाव लोगों पर अधिक समय तक क्यों नहीं टिक पाता ?

आप ने सही कहा, दरअसल आजकल सबकुछ सतही हो गया है। 'जिन खोजा तिन पाइया, गहरे पानी पैठ' आज कोई गहराई में उतरना ही नहीं चाहता। सबकुछ कम्प्युटराइज्ड हो गया है, मैनुअल वर्क खतम हो गया है, दिल से दिल की बात खत्म हो गई है। लोगों का आपस में संपर्क नहीं रहा। यह परिवर्तन सिर्फ फिल्मों तक सीमित नहीं है, हर क्षेत्र में हुआ है। मेरे एक भाई जो डॉक्टर थे वह अमेरिका चले गए थे। एक बार अमिताभ बच्चन और कल्याणजी आनंदजी के साथ मैं अमेरिका गया तब उनसे वहाँ मिला। वह मुझे बताने लगे कि आजकल डॉक्टरों का भी सीधा सम्पर्क मरीजो से नहीं होता है। सारे टेस्ट अलग-अलग होते हैं उसी आधार पर वह मरीज के लिये दवा लिख देते हैं। पहले जो मरीज और डॉक्टर के मध्य मर्ज की जाँच-पडताल के बाद एक रिश्ता बनता था वह अब नहीं रहा।

(कुल मिलाकर अमीन सयानी साहब के कहने का अर्थ यह था कि इस तकनीक और शॉर्टकट के दौर में लोगों के भीतर एहसास की कमी हो गई है इसीलिये परिणाम भी वैसा ही होगा)

इन दिनों रेडियो पर कई एफ.एम. चैनल हैं, साथ ही कई नए रेडियो-जॉकी भी। क्या आपको उनके उच्चारण और प्रस्तुति की शैली ठीक लगती है ?

इन दिनों हर चीज थोड़ी बिगड़ गई है। लोगों के सोचने की क्षमता कम हो गई है। हमारी परम्परा का जो स्तर था, जो ऊँचाईयाँ थी, वहाँ तक लोग आज पहुँचने की कोशिश भी नहीं करते। अभी जो नये एफ.एम. के अनाउंसर आ रहें हैं, इन लोगों ने शायद मुझे सुन रखा था। जिस प्रकार की धूम मैं मचाता था उसी प्रकार से धूम यह भी मचाने की कोशिश करते हैं। अंतर यह है कि यह लोग स्क्रिप्ट लेकर नहीं बोलते ऐसे में कई गैरजरूरी फिजूल बातें निकल जाती हैं। आजकल जो एफ.एम. पर कमर्शियल बनते हैं यह मुझे ठीक नहीं लगते। धूम-धड़ाके के साथ बनावटी आवाज में जब बोलते हैं तब समझमें ही नहीं आता कि यह लोग आखिर बेच क्या रहे हैं। जब नये एफ.एम. स्टेशन आए तब उनमें अपना वर्चस्व बनाए रखने के लिये प्रतिस्पर्धा बढ़गई। पुराने मधुर संगीत को भूलकर आजकल के धूम-धड़ाके वाले गीतों को प्राथमिकता देने लगे। ऐसे में सुनहरी दौर का जो संगीत था श्रोता उसकी कमी मेहसूस करने लगे। मेरा सम्पर्क अधिकतर नये एफ.एम.वालों से भी था इसलिये मैंनें उनसे कहा कि भाई उस जमाने को मत भूलो, कुछ नया भी करो, कुछ पुराना भी करो। फिर जाकर कुछ एफ.एम. स्टेशन ने इसकी शुरूआत की। खासकर रेडियो मिर्ची और रेडियो सिटी ने पुराने गीतों की शुरूआत की। मेरा यह मानना है कि परम्परा और प्रगति के मध्य संबध टूटना नहीं चाहिये। कुछ अच्छे रेडियो अनाउंसर भी आये हैं जैसे गौरव श्रीवास्तव और अनमोल। यह दोनो अच्छा बोलते हैं।

ब्रॉडकास्टिंग की दुनिया में आने के बाद, ऐसे कौन से अवसर आए जब आपको सब से अधिक खुशी का एहसास हुआ ?

सबसे पहली खुशी मुझे तब हुई जब रेडियो सिलोन पर हिन्दी में काम करने का अवसर मिला। जहाँ तीस-चालीस पत्र आने की उम्मीद थी, वहाँ मेरे पहले ही गीतमाला के कार्यक्रम में नौ हजार पत्र आ गए तब मुझे बहुत खुशी हुई थी। मेरी शादी हुई, बेटा हुआ और जब वह पहली बार चलने लगा तब में आपको बता नहीं सकता मुझे कितनी खुशी हुई थी। गीतमाला के 25 वर्ष पूर्ण होने पर जब मुम्बई के शण्युखानंद हॉल में एक भव्य सिल्वर जुबली कार्यक्रम हुआ तब भी मुझे बहुत खुशी हुई थी। उस कार्यक्रम में ग्याराह फिल्मी सितारे आये थे। फिल्म उद्योग से अधिकतर लोग उस कार्यक्रम में उपस्थित थे। गीतमाला के सिल्वर जुबली कार्यक्रम पर एच.एम.वी ने दो एल.पी. रिकॉर्ड भी निकाले थे। जिन्दगी में खुशियां तो मिली लेकिन उसके साथ गम भी बहुत मिले। उन दिनों जी तोड़ मेहनत करता था उसके बावजूद मैंनें पैसे नहीं कमाये। थोड़ा बहुत जो भी कमाता था उसे अपने स्टाफ में बाँट देता था। जिन्दगी भर मैंनें ज्यादा पैसे नहीं कमाये। अभी पिछले दस सालों में जाकर मैंनें थोड़ा-बहुत कमाना शुरू किया जब मेरे प्रोग्राम एक्स्पोर्ट होने लगे, कुछ बड़े रेडियो स्टेशन ने मेरे प्रोग्राम खरीद तब जाकर मेरी कमाई शुरू हुई। जब तक मैं रेडियो सिलोन की एजेंसी से जुड़ा हुआ था कभी कमाई नहीं कर पाया। जी तोड़ मेहनत मैं पहले भी करता था, आज इस उम्र में भी अपनी रोजी- रोटी चलाने के लिये मैं मेहनत करता हूँ। शरीर को तंदरूस्त बनाए रखने के लिये घर में ही थोड़ा बहुत चल लेता हूँ, मुद्रा प्राणायाम कर लेता हूँ जो कि दुनिया का सबसे आलसी प्राणायाम है। खाने-पीने मे भी थोड़ा परहेज करता हूँ। रोज सुबह अपने दफ्तर आकर, काम से लग जाता हूँ। इस प्रकार से जिन्दगी चल रही है, जबतक उपर वाला चलायेगा मैं चलता रहूँगा। (इंटरव्यू से पूर्व अमीन साहब ने मुझसे अपने बेटे राजिल सयानी का परिचय करवाया था। मैंनें देखा उनके बेटे भी पिता की तरह उसी दफ्तर में बहुत व्यस्त रहते हैं)

मैं देख रहा हूँ, आपके दफ्तर के काम में आपके सुपुत्र भी आपको सहयोग देते हैं।

मेरे लिये बहुत बड़ा सहारा है मेरा बेटा। दरअसल वह डॉक्टर बनना चाहता था क्योंकि मेरे परिवार में अधिकतर लोग डॉक्टर थे। मेरे पिता, मेरे भाई, मेरे दो मामा और कई रिश्तेदार भी डॉक्टर थे इसलिये इसकी भी इच्छा थी की वह डॉक्टर बनें। पढ़नें में भी वह बहुत अच्छा था, मार्क्स भी बहुत अच्छे थे पर कुछ ऐसे हालात बने कि तमाम कोशिशों के बाद भी यह डॉक्टर नहीं बन पाया। बाद में अमेरिका में रहकर चार साल तक उसने टेलीविजन का कोर्स किया और वहाँ से आने के बाद यहाँ पर कुछ काम भी किया। मेरी पत्नी रेडियो के कार्य में मेरी सहयोगी थी। बाद में वह काफी बीमार रहने लगीं और फिर उनका देहांत हो गया। तब मेरे बेटे ने मुझसे आकर कहा कि - ''मैं आपके साथ कार्य में जुड़ जाता हूँ क्योंकि अब मम्मी भी नहीं रहीं, ऐसे में डेडी आप बहुत परेशान हो जायेंगे।'' उसके बाद वह मेरे इस काम से जुड़ गया। स्टाफ को देखना, मेरे प्रोग्राम का एक्स्पोर्ट कार्य देखना, लाइब्रेरी संभालना, एक्युपमेंट की देखरेख करना यह सारा कार्य वही देखता है। सिर्फ प्रोडक्शन का काम मैं देखता हूँ।

इस बातचीत के अंत में मैं आपसे पूछना चाहूँगा, समावर्तन के पाठकों के लिये आप अपनी ओर कोई संदेश देना चाहेंगे ?

मैं यही संदेश देना चाहूँगा कि जो भी आप कहते हैं या लिखते हैं, उसे मन से कहें और मन से लिखें। बात में इतनी गहराई हो जो आपके दिल से निकलकर श्रोता और पाठक के दिल तक पहुँचे। यदि आप संचार के क्षेत्र में आ रहे हैं, लेखक या - ब्रॉडकास्टर बन रहे हैं, तब इतना याद रखें कि वह सिर्फ पब्लिक तक सीमित न रहे। उसका संचार अपने करीब के लोगों से भी बनाए रखें ताकि रिश्तों का सिलसिला भी चलता रहे। मुझसे अपने जीवन में यह गलती हुई कि मैं काम में डूबकर रह गया। अपनी पत्नी, अपने बेटे को समय ही नहीं दे पाता था। मेरी पत्नी मेरे साथ ही काम करती थी इसलिये सुबह साथ-साथ दफ्तर जाते और थक-हारकर शाम को लौटते थे। कभी-कभी तो देर रात तक हम लौटते थे। इसलिये साथ-साथ रहते हुए भी इतना अवसर नहीं मिल पाता था कि हम एक दूसरे से दिल की बात कर सकें। इस कारण जो प्यार मैं अपनी पत्नी और बेटे से हासिल कर सकता था वह मैं नहीं कर पाया, इस बात का मुझे अफसोस है। उसी वजह से मैं कहता हूँ यह जो रिश्ते की डोर है। इसको सबके साथ बाँधे रखो। हिन्दी के एक मुस्लिम कवि थे अब्दुर्रहीम ख़ान ख़ाना उनका एक दोहा मुझे याद आ रहा है-

रहिमन धागा प्रेम का मत तोडों छिटकाय।
टूटे तो फिर ना मिले, मिले गांठ पड जाए।

इसलिये मैं सभी से यही कहता हूँ मेरे भाईयो, मेरे हिन्दुस्तानियों, ऐशिया और समस्त दुनिया के लोगों। आपस में लडो नहीं मिलो, तोड़ो नहीं जोड़ो।

वज़ीर पार्क कॉलोनी, उज्जैन
rafiqfilms@gmail.com

मृगतृष्णा की कविताएँ

युवा कवि मृगतृष्णा की ये कविताएँ मुक्ति की आकांक्षा की कविताएँ हैं। यह मुक्ति परम्परा से विद्रोह के रूप में भी है और नए के अन्वेषण के रूप में भी। इस दुधारी तलवार पर सधे हुए कदमों से चलकर वे अपनी कविता पाती हैं। बने-बनाए ढर्रे या कहें कि रूढ़ियों को तोड़ने की एक अदम्य बेचैनी मृगतृष्णा की कविताओं की मूल प्रतिज्ञा है। घर संवारने वाली कोई घरेलू स्त्री मार्का पत्रिका और सस्ते में मिल रहा कोई यात्रा-वृत्तांत के बीच का चुनाव कवयित्री के इस संघर्ष का पता देता है। जीवन में चीनी का स्वाद प्राथमिकता है या नमक की जरूरत! वह अपने पारम्परिक अस्तित्व को तोड़कर अपने लिए एक उन्मुक्त संसार गढ़ना चाहती है-' पत्नी सीख रही है आजकल सिर्फ प्रेमिका होना/ और स्त्री को जूड़े में लपेट पीछे/ फेंक देती है बेपरवाह' (पत्नी)। 'एक अघोरी सुबह' कविता में वे असम्भवों की फैण्टेसी रचती हैं। यह फैण्टेसी उनके अपने लिए है क्योंकि तमाम विरोधों का असमंजस बिठाते उनका आग्रह-वृत्त अपने ही ईर्द-गिर्द रहता है। इस कविता में वे अनूठे बिम्बों का आत्मीय स्पर्श करती हैं-'सप्तऋषि तारामण्डल के पड़ोस में/ अपनी चाहनाओं का एक जुगनू जला देना' या किसी पहाड़ी नाले में/ उम्मीद की शकुन्तला को बहा देना' या 'अपनी चमड़ी से महबूब के लिए एक लिबास बुनना'। यहाँ कवयित्री ने प्रेम और समर्पण को अपनी समर्थ काव्य-भाषा और शिल्प से नए आयाम दिए हैं वह भी प्रेम की तमाम अभ्यस्त और रूढ़हो चले आस्वाद के खिलाफ। 'यार पिता' शृंखला की कविताएँ एक बेटी के रहस्यमयी संसार को नए सिरे से खोलती हैं-उसकी पूरी जटिलता में लेकिन दृढ़विचार के साथ! पिता-माँ और बेटी के विभिन्न कोणों पर मिलते-टकराते रिश्तों की अनूठी बानगी है ये कविताएँ। इन कविताओं में भी कवयित्री अद्भुत इमेजरी रचती हैं-'जैसे पुश्तैनी मकान की/ इकलौती दीवार घड़ी/ भाँय-भाँय वाले सन्नाटे के साथ/ परिधि की सीमा में/ करती रहती है दो-दो हाथ अकेले।' पिता और माँ के साथ अपने रिश्तों की टोह लेते समय मृगतृष्णा वस्तुनिष्ठ और दो टूक साहस की समर्थ भाषा का निर्माण करती है। बेटी का बाप पर जाना और बेटी के भीतर माँ का बचे रहना जैसे काव्य-पद स्त्री-संवेदनों की जटिलता को अत्यंत मार्मिक और प्रभावी रूप से उकेरते हैं। यह तभी संभव होता है जब आपके भीतर नाजुक संवेदनों के साथ समर्थ भाषा की जुगलबंदी भी चल रही हो। 'अप्रेम नायिका' कविता स्त्री-विमर्श को नए सिरे से देखने, उसे परिभाषित करने और विमर्श के भीतर एक समांतर विमर्श रचती है। कवयित्री की ये नायिकाएँ सब कुछ लिखे को मिटाकर हर्फ पर एक नया ककहरा लिखना चाहती हैं। ये टूटकर प्रेम करने को आतुर हैं और आकाश के समतल पर अपनी शतरंज बिसात बिछाकर एक 'गेम' जीतने के लिए कटिबद्ध हैं। वे मरघट के सन्नाटे के जरिये उस जीवन-दर्शन को भी पा लेना चाहती हैं जो किसी नियति-यात्रा का समापन होता है। कवयित्री का समूचा आग्रह इस संघर्ष और जद्दोजहद के जरिये खुद को 'नेचर' में तब्दील कर देने का है। 'भागी हुई लड़कियाँ' के माध्यम से मृगतृष्णा ने विद्रोह के चरम दृश्य रचे हैं। इन कविताओं में एक जबर्दस्त प्रतिपक्षीय भूमिका है जो कथित समाज या खाप की बेड़ियों को चुटकी बजाते तोड़ देती है। दरअसल एक आंतरिक सर्जनात्मक खिलंदड़ापन इन कविताओं की जान है क्योंकि कवयित्री मानो सिगरेट के धुएँ के छल्लों की तरह उन्हें एक उपहासास्पद भाव से उड़ा देना चाहती है। यह भी संघर्ष का एक तेवर होता है-'वे सिर्फ मुस्कुराती नहीं/ बल्कि बत्तीस दाँतों की ऐसी निर्लज्ज हँसी हँसती हैं/ कि खाप के कान फट जाते हैं' या 'भागी हुई लड़कियाँ छत्तीस बत्तीस के फिगर में नहीं होतीं/ कि भागी हुई लड़कियों का अपना व्यक्तित्व होता है।' युवा कवयित्री ने प्रेम,प्रेयस और पति को लेकर जो छोटी कविताएँ लिखी हैं वे एक ओर प्रेम के उदात्त स्वरूप को रेखांकित करती हैं दूसरी ओर रिश्तों की बारीकियों की भी एक अलग तरह से पड़ताल करती हैं। इनमें स्त्रीमन का संताप भी है -'पूज्य पात्र भूल बैठे/ भविष्य में लिखी जाएगी/ गुनाहों का देवता के जवाब में/ रेत की मछली' और मंगलकामनाएँ भी - 'भादों के बादलों को चाहिए बस उतनी मोहलत दें/ किसी शहर को भीगने से बचने की/ कि जितने में सब चीटियाँ/ दाना इकट्ठा कर लें खाने का।' युवा कवयित्री मृगतृष्णा मुझे हिन्दी कविता का एक संभावनाशील नाम नजर आता है जिसके पास न सिर्फ नाजुक अहसासों का खजाना है बल्कि उनकी अभिव्यक्ति के लिए समर्थ भाषा-शिल्प का काव्य-व्यक्तित्व भी।

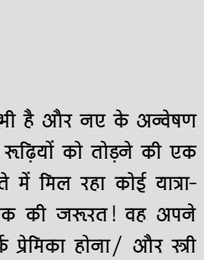

निरंजन श्रोत्रिय

पत्नी

आजकल उजाला होने से ठीक पहले
पत्नी की आँखें देखने लगती हैं
पके सावन और हरे जेठ के सपने
कि उसका राजकुमार भटक रहा है नंगे पाँव
किसी आबनूस के जंगल में
जंगली फूलों की झोली गले में लटकाये
देवदार की कमर को छूता है हथेलियों से
और बांध देता है अपनी उम्र वाली रेखा
बांसुरी की टहनियों से पूछता है कि आखिर
कितनी पुरानी हो सकती इश्क कार्बन डेटिंग
पत्नी देखती है कि उसका राजकुमार
सीने पर उगा रहा है जंगली बेल
और लांघती जाती है पहाड़ दर पहाड़
नदी करवट बदलती है उसकी पीठ पर और
रेत घड़ी से सरकती रहती है पिछली रात
वो मरून परदे से छानती है चटख धूप
फिर कुछ यूँ पीती है उसे एक साँस में जैसे
छुपकर हलक से उतारा गया हो टकीला शॉट
पत्नी आजकल हड़बड़ाकर नहीं उठती
भूल जाती है अक्सर कि दो कप चाय में
चुटकी भर चीनी चाहिए या चम्मच भर नमक
वो हिसाब लगाती है कि नमक ज्यादा जरूरी है
पीनी चाहिए चाय या
घूँट भर उसकी भाप
राशन की दुकान के बजाय
क्यों न चला जाए इलायची के उस बाग
नदी मिलती है समंदर में या
समंदर होने को चाहिए, नदी का साथ
पत्नी महसूसने लगी है आजकल
लाल और सफेद से इतर
दूसरे रंगों का आत्मविश्वास
आईने के सामने खड़ी हो
पहनती है नंगी देह पर हरे रंग का लिबास
वो हिसाब लगाती है
कि सिर पर ज्यादा जरूरी है छतरी का होना
या भादों की बरसात
सीधे पल्लू का आँचल या
निर्वस्त्र नितांत अकेले
रातभर किसी धौलाधारी झील का साथ
बैठ जाना सबसे ऊंचे पहाड़ पर
और फैला देना बाँहों का आकाश
आखिर क्या ज्यादतम जरूरी हो सकता है
घर संवारने वाली कोई पत्रिका
या फिर आधे दामों में बिकता
कोई सेकेण्ड हैण्ड ट्रैवलॉग
घर को महकाए पवित्र धूप और किसी मंत्र से
या रात तितलियों की मौत
पर छेड़ दे होतभोर रूदाली राग
पत्नी सकपका जाती है जब
जागती आखों वाले सपने में
बिना चेहरे का कोई कमउम्र पुरूष
उससे करता है रोमांस
और पूछता है प्रेम जताने का कोई नया पाठ
पत्नी सीख रही है आजकल सिर्फ प्रेमिका होना
और स्त्री को जूड़े में लपेट पीछे
फेंक देती है बेपरवाह

एक अघोरी सुबह

रात सोने से पहले आँखों में
काजल धौलाधार लगाना
किसी धौलाधारी झील वाले सपने से हड़बड़ाकर
रात की चिता पर उठ बैठना
नजर बादल होना
मौत की दिशा वाली खिड़की का आसमान होना
सप्तऋषि तारामंडल के पड़ोस में
अपनी चाहनाओं एक जुगनू जला देना
रात के जंगल में काले पेड़ों पर हरा खोजना
किसी पहाड़ी नाले में
उम्मीद की शकुंतला को बहा देना
(चूँकि वर्तमान को गुजरे वक्त की
भूख लगती आई है इसलिए)
पलटकर कमरे में फिर लौटना
और महबूब का बासी खत चबाना
गोल्डन पर्दों के बीच
मिल्की वाईट फिश हो जाना
भुरूकवा को हीरा समझ पूरब से नोंच खा जाना
सांस वाली गर्दन को पहाड़ी नदी से सहलाना
दुनियादारी के जूते पैरों में पहनकर
(हाइवे नंबर चौबीस के जमाने याद करना)
ग्लॉसी पेपर की उम्रदराज मैगजींस में
दिल के दंगों पर बुक मार्क लगाना
फिर हड़बड़ाना और हडबडाकर
खाकी झोले की हर किताब बदहवास सा सूंघना
प्रीतम की नज्म से टुथ एंड डेयर खेलना
जवाब में तीन की जगह ग्यारह डॉट्स लगा देना
रात की दोपहर में राग पीलू शाम सुनना
बरसता है ये जमाना बहुत
एक अघोरी सुबह में
अपनी चमड़ी से महबूब के लिए
एक लिबास बुनना

यार पिता

पिता को लिखे खत में
न चाहते हुए भी मैंने...
पितावश ...सम्बोधित किया था
'प्रिय पिता'
पिता हमेशा से ही जटिल बने रहते हैं
मेरे शब्दों में
जैसे भावनात्मक चक्रव्यूह में
मैं होते हैं
जब मेहमान के आधी रात आगमन पर
माँ असमंजस में पड़ जाती है
कि दाल में नमक बढ़ाऊँ कि पानी
वे जटिल बने रहते हैं
उतने ही
कि मैं नहीं पूछ पाती उनसे
लम्बे अंतराल पर मिलते ही
....'यार पिता और सुनाओ! कैसे हो''
------''-----
जैसे माँ की छातियों से
चिपका रहता है वात्सल्य
पिता संग परछाईं सा लगा रहता है
पितापना
आजकल... पिता तनकर
नहीं खड़े होते
बस स्मृतियों के कोने से
लुढ़कते चले आते हैं
ऊन के गोले की तरह बिना बताये
और उनके पीछे -पीछे घिसटती चली आती है
एक पूरी सर्द उम्र .....
------''-----
मेरे आकार लेते व्यक्तित्व में
पिता डेरा डाले रहते हैं
अधिकार सहित
जैसे पुश्तैनी मकान की
एकलौती दीवार घड़ी
भाँय-भाँय वाले सन्नाटे के साथ
परिधि की सीमा में
करती रहती है दो दो हाथ अकेले
------''-----
पिता को चढ़गया था एक बार मीठा पान
उन्हें बेसलीका लगती थीं
ठट्ठाकर हँसने वाली लड़कियाँ
ये जानते हुए भी
मुझे कई बार पड़ते हैं बेतहाशा हँसी के दौरे
दुनिया को कई दफा मैंने
अस्सी घाट की सीढ़ियों पर बैठ
उड़ाया है बैक टु बैक क्लासिक रेगुलर में
यार पिता ! ये बताओ
मध्यम वर्गीय लड़कियाँ क्यों नहीं कर पाती
प्रेयस को टूटकर प्यार
------''-----
माँ देखो तुम भौचक्की मत हो जाना
मेरी इस ढीठ स्वीकारोक्ति से
कि तुलनात्मक रूप से मुझे
पिता की बेटी कहलाना अधिक पसंद है
दोष तुम्हारे उस ताने का भी उतना ही है
'कि बिलकुल अपने बाप पर गई है'

अचानक कुछ भी नहीं होता
जैसे तय होता है
बच्चे का रोना सुनकर
माँ को जागना होता है
पहले
जैसे पहलौठी का बच्चा
बाप पर थोड़ा ज्यादा पड़ता है
और बुढ़ापे में
उम्र कराहती है घुटनों से
संपत्ति के बंटवारे के बाद
जैसे मान लिया जाता है
पिता ऊँचा सुनेंगे
अचानक कुछ भी नहीं होता
तय होता है सब पहले से ....
माँ से मिलने होते हैं
सांप कि केंचुल से उतरते
महीने के वो पाँच दिन
जो आप नहीं दे सकते
पिता मुआफ करना कि
मुझमें बची हुयी है थोड़ी माँ

अप्रेम नायिका

जब सब कुछ कहा जा चुका होगा
जब सब सुना जा चुका होगा
कविताओं में स्त्रियों पर
जब पूरी की जा चुकी होगी सारी लिखत-पढ़त
तब मेरी कविता की अप्रेम नायिका
आसमान के समतल पर बिछायेगी अपनी
शतरंज की गोटियां
------‘‘-----
आजकल खबरें कहती हैं कि
स्त्रियों में बढ़रहा हैं
वर्जिनिटी ट्रांसप्लांट का चलन
मेरी कविता की अप्रेम नायिका
शनिच्चर ग्रह का एक छल्ला बाईं कलाई में पहन
सूरज की तीन लपटों का रक्षासूत्र
लपेटती हैं कमर में
दाईं जेब में दिल .....खंजर दायें जानिब रखकर
तैयार हैं हर बार
टूटकर प्रेम करने को
------‘‘-----
मेरी कविता की अप्रेम नायिका
दीवानी हैं मरघट के सन्नाटे की
वो गुनगुनाती हैं नए जन्म के गीत वहाँ
क्योंकि ....
अपने जन्मे को नियति की चिता पर देखना भी
एक यात्रा के पूरे होने की संतुष्टि हैं
------‘‘-----
धौलाधार की सबसे ऊँची चोटी पर
निर्वस्त्र बैठ
किसी सूर्य को जलाना
कुंती के लोक लाज के किस्से
चारों दिशाओं में बिखरा देना
किसी अनजान टापू की हवाएँ
एक सांस में पी जाती हैं
वो चाहती हैं जब समंदर की लहरें
खेल रही हों उसके नितम्बों से
तब उसकी पीठ पीछे कोई जोड़ा कर रहा प्रेम
मेरी कविता की अप्रेम नायिका
सीख रही हैं प्रति होना

ऐलोपैथी के असर-सी तेरी याद और
मास चैत-सा मेरी देह का तापमान
गो कि तेरी कलाई पर बंधा वक्त
गला कुछ यूँ दबाए है मेरा
जो जीने भी न दे और साँस लेने की मनाही सख्त
.....और नुसरत समझाए जाते हैं नीम बेहोशी में
कि आज कह दे यार तृष्णा! ...तेरा नाम लूँ जुबाँ से
(एक गोली इश्क की और पैरासिटामॉल भर बुखार)
(डायरी बुखार और विरहन चैत की)

भागी हुई लड़कियाँ

1
भागी हुई लड़कियों के पाँव
पीछे की ओर नहीं होते
उनकी बातें तैरती है हवाओं में
पीछे पीछे
ठीक उसी तरह जैसे
बारिश में छुपकर नहायी
किसी लड़की की देह महकती है पूरे कस्बे में
वे सिर्फ मुस्कुराती नहीं
बल्कि बत्तीस दातों की ऐसी निर्लज्ज हँसी हँसती हैं
कि खाप के कान फट पड़ते है
उड़ाती है दुपट्टा सरे राह यूँ
कि इज्जत की नाक कट जाये
भागी हुई लड़कियां इतनी बेफिक्र चलती हैं कि
चाहनाओं की नींद खुल जाती है
उनकी सवालिया आँखों के
जवाब ढूंढें नहीं मिलते
उनके पाँव पीछे की ओर नहीं होते
भागी हुई लड़कियों का अपना वर्तमान नहीं होता
कि भागी हुई लड़कियाँ बेशक ‘भूत’ होती हैं

2
भागी हुई लड़कियाँ अपने पीछे तस्वीरें नहीं छोड़तीं
वे छोड़ आती हैं अपने पहलेपन की उम्र
दीवार की एक बंद खिड़की
रात की दोपहर के बाद की सुगबुगाहटें
पड़ोसन की चालीसवीं कमर पर
स्याह छल्ले
चुप्पी का सन्नाटा
कैलेण्डर की पीठ पर
खास लम्हों के लाल गोले
वे छोड़ आती हैं विदा की एक घड़ी
और सब्र का एक टूटा हुआ घड़ा
भागी हुई लड़कियाँ साथ ले आती है
अपना सोलहवाँ
और इज्जत की नाक
कि भागी हुई लड़कियाँ
कोई किस्सा-कहानी नहीं होती

3
भागी हुई लड़कियों के सपने में
घर की छतें आती हैं
मचान पर बैठी बर्बादी के तोते उड़ाती
सिरमतिया आती है
छोटी बहन को समझाती है कि जमाना खराब है
पर सबसे ज्यादा खराब होती हैं
कई बार घर की दीवारें भी
अपना खयाल और पिता का रखना ध्यान
तुलसी को सूख जाने देना
कैक्टस को देते रहना समय पर पानी-खाद
उन्हें माँ अक्सर याद आती है
और पिता से करती हैं वे सबसे ज्यादा प्रेम
भागी हुई लड़कियां ‘बदचलन’ का इन्द्रधनुष
पीठ पर लादे भटकती हैं
कि भागी हुई लड़कियों के जनमदाग नहीं होते

4
भागी हुई लड़कियों की आँखें
अँधेरे में भय नहीं देखती
सूरज की लपटों को लपेटती हैं वे कमर में
कदम सधी हुई चाल नहीं चलते
ताजी सनी मीठी सी देह लिए
उसे गूँथती हैं तीनों पहर के सांचे में
भागी हुई लड़कियां
छत्तीस बत्तीस के फिगर में नहीं होतीं
कि भागी हुई लड़कियों का
अपना व्यक्तित्व होता है

5
भागी हुई लड़कियों के जीभ नहीं होती
उन्हें रसोई में रास आने लगता है
चीटियों की जगह नमक
चखने लगती हैं हर मौसम का स्वाद
पतझड़ में चढ़ता है उन पर हरापन
और सावन में बचाये रखती हैं
अपना पत्तापना
प्रेम के महीने में ढूंढलाती है एकांत
पुरखों के महीने में कव्वों को खिलाती हैं
मिली हुई नसीहतें
समंदर जीत लेने की धुन लिए
वे नदी कहलाना अधिक पसंद करती हैं
सु ‘शील’ जैसा कुछ ढूंढे नहीं मिलता
गो कि उनमें जिद होती है
छुटपन में जैसे सबसे पहले बोली थी पिता
उसी नाम के सिगरेट के छल्ले बनाना
सीखती है सबसे पहले
प्रेम के जवाब में,
भागी हुई लड़कियों के पास होती है
अपनी किताब कि
हर बार भागी हुई लड़कियों के प्रेमी नहीं होते

प्रेम

हँसती है जोर से खुल कर
बालों में उँगलियाँ फिराकर इतराकर बताती है
पसंद नयी बात
वो चुप रहता है
मुस्कुराकर चोरी से कर लेता है
फिंगर्स क्रॉस्ड .....
(पति नहीं था यकीनन प्रेयस रहा होगा)
------‘‘-----
उसने सबसे पहले
कागज के जहाज बनाने सीखे
फिर उनके पीछे-पीछे भागना ...
जब पहली बार किताबों में पढ़ी
उसने बरनौली की प्रमेय
तब तक सीख चुका था
प्रेम की पतंगे उड़ाना
(पति नहीं बना वो ,प्रेयस रह गया)
------‘‘-----
सफेद रूमाल में तहकर के रखा
होठों का निशान
रखूंगा बायीं जेब में
तुम्हारा दिया दुपट्टा बांध आँखों पर
गुजारूंगा रात किसी वेश्या के साथ
तुम्हारे सवाल जवाब
स्वीकारता हूँ फिर वही बात
प्रेम था
प्रेम है
या फिर रही होगी
प्रेम की कोई गुप्त ऊष्मा
तुम करती रहो इंकार
हर बात में ढूंढलूँगा
प्रेम के यथासम्भव पर्यायवाची
(पति नहीं था यकीनन प्रेयस रहा होगा)
------‘‘-----
पांचों ने हामी भरी
बाँट लेंगे नितांत एकांत के क्षण भी
तुम अकेली के साथ
चौदह कदम लेकर भले बिताओ
चौदह साल का वनवास
फिर भी मांगूगा अग्नि परीक्षा
पूज्य पात्र भूल बैठे
भविष्य में लिखी जायेगी
‘गुनाहों का देवता’ के जवाब में
‘रेत की मछली’
(पति थे सब...कोई प्रेयस नहीं रहा होगा)
------‘‘-----
आत्मा की आजादी
साझे की बुक शेल्फ
यदि रख दूं मैं
वात्स्यायन की कामसूत्र के जवाब में
अपनी कोई किताब
(आधार है...पति नहीं था प्रेयस ही रहा होगा)
------‘‘-----
यूं लौटने को बेहद देर कर दोगे
प्रेमिकाएं जो कमजोर नहीं पड़तीं
बड़ी तबियत से बिखरती हैं
तुम पलटते रहना फिर
जिंदगी के वे सब सफहे
जिनपे उन्होंने बुकमार्क लगा रख छोड़े होंगे
पर वे लौटेंगी नहीं उस बेहोशी से
तुम्हारे सब जतन बेकार जाएंगे
जब वे ठीक हो सकती थीं सिर्फ
कान की लवों के पीछे काटी गई
एक चिकोटी से तुम ऐसे पलटे थे जैसे
विषदंश के बाद पलटता है सांप
जिन्हें हम प्रेम के दुःख समझ
पीछे की ओर लौटने लगते हैं
दरअसल वे प्रेम की पीठ पर उगे
पांच सितारे हैं
------‘‘-----
उदासी बस इतनी सी है कि
कोई सबसे सुंदर झुमका
खो गया हो बरेली शहर में
और कान की सूनी लवें
ऋषि पत्नी-सी व्याकुल हों
शिशु प्रेमी के चुम्बन को
------‘‘-----
प्रेमियों की आँखें प्रेम में सुंदर दिखती हैं
किन्तु मैंने देखा झांक कर
वे विरह में ऐसी सुंदर संपूर्ण हुई थीं
कि जैसे मादा मृग से बिछुड़े
उसके छौने की
------‘‘-----
जब दुनिया में अविश्वास
अमीबा की तरह जन्म ले रहा था
दिसंबर का महीना साल की आंख में
किसी किरकिरी-सा चुभता था
उस दौर में भी
तुमने मेरी आँखों पर भरोसा बनाये रखा
जो अब इनमें
किसी बच्चे की आंखों सा चमकता है देखो
------‘‘-----
प्रेम से कहो
थोड़े दिन के अवकाश पर रहे
और
तुम्हें भ्रम में जीने दे
भ्रम उतने ही खूबसूरत हैं
जितने कि सत्यं शिवम सुंदरम
------‘‘-----
भादों के बादलों को चाहिए
बस उतनी मोहलत दें
किसी शहर को भीगने से बचने की
कि जितने में सब चीटियाँ
दाना इकट्ठा कर लें खाने का
(धर्मशाला की बारिश जून के गाल पर चांटे मारती है)
------‘‘-----
मेरे तीसरे नेत्र की अभिलाषा है
कि तुम्हारे अंदर के पुरूष को
हमारे प्रेम में
मुस्कुराते हुए देखे
जैसे बुद्ध मुस्कुराते थे मंद-मंद
ध्यान में

नामः मृगतृष्णा

जन्म : 3 मई 1990, लखनऊ

शिक्षा : लखनऊ विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर उपाधि के बाद हिमाचल प्रदेश, धर्मशाला में शोधरत

सृजन : असुविधा ब्लॉग में कुछ कविताएँ प्रकाशित।

सम्पर्क : पत्रकारिता संस्थान, हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय, एचपीसीए क्रिकेट स्टेडियम के पास, धर्मशाला- 176215

मोबाइल : 9882521049

ई-मेलः mrigtrishna90@gmail.com

कहानी

दरका हुआ दर्पण और खंडित छबियाँ

मालती जोशी

कांग्रेच्यूलेशन्स मि. कुमार डॉ.शेफाली ने बाहर जाते ही कहा- 'आपके यहाँ एक नन्हा मेहमान आने वाला है।'

कपड़े ठीक करते हुए मैंने परदे की फाँक से 'मि.कुमार' की प्रतिक्रिया देखनी चाही। उनका चेहरा एकदम फक पड़ गया था। मैं जब बाहर आई तो वे बुदबुदा रहे थे- मैंने तो सुना था- इस उम्र में बच्चों का कोई खतरा नहीं होता।''

उसे खतरा नहीं कहते मि.कुमार- संभावना कहते हैं। इस उम्र में संभावना सचमुच बहुत कम होती है। इसीलिये आपको कोग्रेच्यूलेट कर रही हूँ। यू आर लकी। रादर शी इज लकी डॉक्टर ने कहा। फिर मुझसे मुखातिब होकर बोली- ''सिट डाउन डियर। वी हैव टू डिस्कस ए लॉट।''

मैं अपनी कुर्सी पर बैठ गई। डॉक्टर प्रिस्क्रेप्शन लिखने' लगीं।' साथ ही मुझे ढेर सारी हिदायतें भी देती जा रही थी। मैंने कनखियों से इनकी ओर देखा। उनका चेहरा एकदम पथराया हुआ था वे वहाँ बैठे जरूर थे। पर शायद कुछ भी देख सुन नहीं रहे थे।

थैंक्यू डॉक्टर मैंने उठते हुए कहा।

'ओ के डियर टेक केयर। वे बोलीं और उन्होंने आया के लिये घंटी बजाई। शायद वे अगली पेशेंट को बुलाना चाह रही थीं।

'चलें' मैंने इनसे कहा तो ऐसे चौंके जैसे नींद से जागे हों। नींद में चलने वाले व्यक्ति की तरह ही बाहर आये और गाड़ी में बैठ गये। मेरे बैठने के बाद भी उनकी समाधि भंग नहीं हुई। स्टिरिंग पर हाथ रखकर वे बैठे ही रहे।

'चलना नहीं है क्या ? मैंने खीजकर कहा। 'ओह सॉरी' उन्होंने कहा और गाड़ी स्टार्ट कर दी। उनका ये रवैया देखकर घर जाने का उत्साह ही खत्म हो गया। मैंने कलाई घड़ी की ओर देखकर कहा ' ओह ! दस बज रहा है। अब घर जाकर लौटूँगी तो बहुत देर हो जायेगी। प्लीज़ मुझे कॉलेज छोड़ दें।'

उन्होंने कोई प्रतिवाद नहीं किया और रूट बदल दिया। थोड़ी देर में गाड़ी कॉलेज के गेट पर थी। मुझे उतारकर वे चुपचाप चले गये।

गेट पर ही अदिति मिल गई। वह सुबह सुबह गणित के एक्ट्रा क्लासेस लेती है। बोली- आज मिंयाजी पकड़ाई मैं कैसे आ गये?

सुबह सुबह आ जाते हैं। शाम का कोई ठिकाना नहीं होता।'' बोलते हुए हम लोग कॉरीडोर में पहुँच गये थे। वहाँ और लोग भी थे। आज सुबह सुबह कैसे ?

डॉक्टर के यहाँ गई थी। सोचा घर जाऊँगी तो लेट हो जाऊँगी।'' डॉक्टर के यहाँ क्या ? कोई खास बात? अरुणा ने आँखें नचाकर पूछा।

उसके चहरे का ग्लो देख न। वही एक बतायेगा मिसेस महाजन बोलीं।

''कसम से अन्ना, शादी के बाद तेरी रंगत ही बदल गई है। दस साल छोटी लग रही है तू'' पूनम ने कहा।

'ए डॉक्टर क्या बोली बता न?' सीमा का आग्रह था मैं मुस्कराकर रह गई तो मिसेस महाजन बोली- नहीं बताती तो मत बताने दो। वो छिपेगा थोड़े ही। अभी आगे आ जायेगा।''

ए सुबह से मैंने कुछ खाया नहीं है। मुझे खूब भूख लग रही है ? मेरे साथ कोई केंटीन में चलने के लिये इंट्रेस्ट है?

तू ट्रीट दे रही है क्या ? तो सब चलते हैं ?'

कुछ ही पलों में पूरा जत्था केंटीन में था। लम्बा चौड़ा आर्डर दिया गया। मेरी खुशी जैसे सबकी खुशी बन गई थी। पर खाने की प्लेट सामने आते ही याद आया, इन्होंने एक बार भी नहीं पूछा था कि डायरेक्ट जा रही हो तो तुम्हारे खाने का क्या होगा- जबकि पूछना चाहिये था। यह अहसास होते ही मन खट्टा हो गया और सब कुछ बेस्वाद सा लगने लगा। सखी सहेलियों के बीच मुद्रा बनाये रखना मुझे कठिन लगने लगा।

घर लौटते हुए 'मधुरम' के सामने से गुजरी तो वहाँ की सुगन्ध ने मुझे खींच लिया। मैंने अपनी पसन्द की इमरती और इनके लिये रसगुल्ले ले लिये। मीठे के बाद, कुछ नमकीन भी चाहिये इसलिये समोसे और ढोकले भी पैक करवा लिये। चाय के लिये देर तक इनका इन्तज़ार करती रही। फिर अकेले ही सबका आनन्द ले लिया।

ये देर रात लौटे। मैंने सीधे खाना ही लगा दिया। खाने के साथ 'मधुरम' की सामग्री भी परोस दी।

'अरे- ये क्या क्या बना लिया आज?'

'कुछ नहीं। आज खाना खाकर नहीं गई थी न ही केंटीन जाना पड़ा। वहीं से कुछ घर के लिये भी बँधवा लिया।''

''ओके 'इन्होंने कहा और खाना शुरू कर दिया पर मैं देख रही थी खाने में इनका ज़रा भी मन नहीं है। फिर मेरा मन भी उचट गया। सेलीब्रेशन की हवा निकल गई। सारी खुशी बेमज़ा हो गई। मैंने बचा हुआ सब कुछ उठाकर गंगाराम को दे दिया। कम से कम उसके बच्चे ही ऐंजाय करें।

000000000000000

खाने के बाद ये रोज की तरह टी.व्ही. के सामने बैठ गये। मैं कल के लेक्चर्स की तैयारी करती रही। कोई साढ़े दस बजे मैं सोने गई पर आँखों में नींद का नाम नहीं था। दिनभर का घटनाचक्र दिमाग़ में घूम रहा था।

ये कमरे में आये तब रात काफी हो चुकी थी। मैं सोने का नाटक किये पड़ी रही पर ये शायद जानते थे कि मैं जाग रही हूँ। क्योंकि बिस्तर पर आते ही इन्होंने पूछा- तुम्हें पहले से पता था न।

मैं उनका मन्तव्य समझ गई। इसलिये धीरे से कहा- हॉ, थोड़ा अन्दाज़ा था।'

'तो मुझे बताया क्यों नहीं ?'

'कन्फर्म नहीं था न इसीलिये तो आपको साथ ले गई थी।'

वे कुछ देर चुप रहे। फिर बोले-'वह महिला इतना' जोश के साथ कांग्रेज्यूलेट कर रही थी कि उस समय मैं कुछ बोल नहीं पाया अब तुम्हीं एकाधबार फोन लगाकर पूछ लेना।'

यही कि केन वी एनीमिनेट मतलब बिफोर इट इज टू लेट- क्या छुटकारा पाया जा सकता है?''

मैं एक झटके के साथ उठ बैठी- व्हाटडू यू मीन? आपको कोई खास खुशी नहीं हुई यह तो मैं जान गई थी। पर आप छुटकारा पाने की बात करेंगे वह नहीं सोचा था।'

लोग क्या कहेंगे ये सोचा है ?

लोग क्या करेंगे और क्या कहेंगे? शादीशुदा हैं हम लोग। कोई अवैध सन्तान नहीं है यह।''

- इस उम्र में बच्चा पैदा करोगी तो हँसी नहीं होगी?

इस उम्र में शादी की है तो इस उम्र में ही बच्चा होगा न। प्रॉब्लम क्या है?''

''प्रॉब्लम तुम्हे नहीं होगी पर मुझे है। इतनी बड़ी बड़ी दो बेटियों के होते हुए तीसरा बच्चा आयेगा तो लोग हँसेंगे।

इतनी बड़ी-बड़ी दो बेटियों के होते हुए आपने शादी को तब लोगों ने कुछ नहीं कहा? और आपकी शादी कोई अनायास नहीं हुई है। आपने बाकायदा मेट्रीमोनियन्स में पोस्ट डाली थी। तब बेटियों का ख्याल नहीं आया।?''

''बेटियों का ख्याल था तभी तो दूसरी शादी की है। जवान होती लड़कियों को घर पर छोड़कर जाते हुए डर लगता है। बुआजी की बहुत मान मनौबल करके यहाँ लाया था। डेढ़साल तक किसी तरह उन्होंने निभा दिया पर वे उकता गई थीं। उन्होंने अल्टीमेटम दे दिया था- मुन्ना जल्दी कोई इन्तजाम करो। ये चौकीदारी अब हमसे नहीं होगी। हमारा भी दरबार है, बाल बच्चे हैं, नाती-पोते हैं। बुढ़ापे में हम उनका सुख भोगें कि तुम्हारी धर्मशाला सम्हालें?.. उधर पलक और महक भी उनसे बोर हो चुकी थी। मजबूरन शादी का निर्णय लेना पड़ा।

उनका एक एक शब्द मुझे छलनी करता चला गया। कसैले स्वर में मैंने कहा- 'तो श्रीमानजी अब मुझे एक बात बता दे। इस घर में मेरा स्टेटस क्या है? आया, वार्डन,या सिर्फ चौकीदार।

'इतना कड़वा बोलने की ज़रूरत नहीं है! मैं तुम्हें इन लड़कियों की माँ बनाकर लाया हूँ।'

रियली ?

मेरे स्वर से वे तिलमिला उठे। कुछ कहने को उनके होठ फड़फड़ाये पर वे चुप रहे। मैंने ही कहा- आपको क्या लगता है, माँ बनना इतना आसान है?'

- क्यों नहीं है? बस थोड़ा सा प्यार दो उन्हें- वे माँ के प्यार के लिये तरस गई हैं।'

प्यार देना कोई चॉकलेट या टॉफी देना नहीं है।-

और आपकी बेटियों की माँ मैं कभी नहीं बन सकती। क्योंकि उनके मन में अपनी माँ की याद अभी ताजा है। वो उस स्थान पर किसी दूसरे की कल्पना भी नहीं कर सकती। हो सकता है इस शादी के लिये वे मन ही मन आपको कौसती रही हों- वे इस समय उम्र के बहुत ही नाजुक और भावुक दौर से गुजर रही है। इस समय आप उन पर कोई रिश्ता लादने जायेंगे तो वे बगावत कर देंगी- हम लोगों के बीच शांतिपूर्ण सहअस्तित्व बना रहे- यही काफी है।

उस रात हम दोनों में से कोई भी नहीं सो सका ?

000

सुबह उठी तो सर भारी लग रहा था। बहुत थकान सी महसूस हो रही थी। कॉलेज जाने का जरा भी मन नहीं था। पर छुट्टी लेती भी तो किस बहाने। और घर में बैठकर करती भी क्या। खाली घर दिनभर भॉय-भॉय करता रहेगा। वहाँ कमसे कम चार लोगों के बीच समय तो कटेगा।

सिनेमा के परदे पर, उपन्यासों के पन्नों पर इस प्रसंग के कैसे मनोहारी चित्र मैंने देखे थे। और मेरे घर में ये कैसी विपरीत लीला होती है। इस उम्र में शादी करके मैंने भूल तो नहीं की?

बेमन से ही सही तैयार होकर जैसे ही एक्टिवा की चाभी निकाली, मन में विद्रोह कर दिया, नहीं, अब एक्टिवा से नहीं जाना है। गंगाराम को भेजकर मैंने ऑटो बुलवाया। पर कॉलेज पहुँचने तक हालत खराब हो गई। लगा कि इससे तो अपनी एक्टिवा ही अच्छी।

मैं ऑटो से उतर रही थी कि मिसेस महाजन सामने पड़ गई। तू इस खड़खड़िया में आई है।

हाँ डॉक्टर ने स्कूटी के लिए मना किया है। मैं सफेद झूठ बोल गई।

तो मियाँ से बोल, गाड़ी का इन्तज़ाम करेंगे।

हम लोगों की टायमिंग अलग है और डायरेक्शन भी।'' तो नई गाड़ी लेने को बोल! दीस इज ए स्पेशल चाइल्ड। उसके लिये नई गाड़ी होना मांगता।'

'प्रेशस चाइल्ड।' कोई मेरे घर आकर देखे इस प्रेशस चाइल्ड का कैसा स्वागत हो रहा है।

दूसरे दिन से मैं केब बुलवाने लगी। कभी कोई छोड़ भी देता। इस नई वाहन व्यवस्था का इन्हें पता ही नहीं चला। क्योंकि ये मुझसे पहले निकल जाते थे और मेरे आने के बाद ही लौटते थे।

एक दिन कोई मीटिंग थी तो मैं देर से घर पहुँची। ये मुझे चाय पीते हुए मिले- तुम्हारी स्कूटी दिखी तो मुझे लगा घर पर ही हो। फिर गंगाराम ने बताया कि आजकल स्कूटी पर नहीं जाती।'

आपकी बेटियों की माँ मैं कभी नहीं बन सकती। क्योंकि उनके मन में अपनी माँ की याद अभी ताजा है। वो उस स्थान पर किसी दूसरे की कल्पना भी नहीं कर सकती। हो सकता है इस शादी के लिये वे मन ही मन आपको कौसती रही हों- वे इस समय उम्र के बहुत ही नाजुक और भावुक दौर से गुजर रही है। इस समय आप उन पर कोई रिश्ता लादने जायेंगे तो वे बगावत कर देंगी- हम लोगों के बीच शांतिपूर्ण सहअस्तित्व बना रहे- यही काफी है।

हाँ-डॉक्टर ने मना किया है'' मैंने अपना झूठ दोहरा दिया- ऑटो पर जाती हूं तो कॉलेज मैं डॉट पड़ती है। इसलिये आजकल रोज कब लेनी पड़ती है।

मुझे लगा ये कहेंगे- अरे बताना तो था। मैं ड़ायवर भेज देता दिनभर बैठा ही तो रहता है।

पर ये कुछ नहीं बोले। जब गंगाराम चाय का सामान समेटकर ले गया-- तो गंभीर-स्वर में बोले- आज ऑफिस में ऐसी ही बात चल पड़ी थी तो मैंने सबको बताया तो मिससे जयशंकर बोली कि इस उम्र में डिलीवरी बहुत रिस्की होती है। नॉर्मल तो खैर होती ही नहीं है। सीजेरियन भी बहुत कॉम्प्लीकेटेड हो जाता है।

मिससे जयशंकर से पूछियेगा कि आजकल कितनी डिलीवरिज नॉर्मल होती हैं? हो सकता है डॉक्टर्स स्वार्थवश ऐसा करते हों या सचमुच वैसी जरूरत होती है- इस देश में पचास प्रतिशत से ज्यादा डिलीवरिज सीजेरियन होती हैं।

और मि.नारंग भी कह रहे थे -

'क्या ?'

इस उम्र में जो बच्चे पैदा होते हैं वे एब नॉर्मल होते हैं। या तो मंदबुद्धि होते है या अपंग।'

नारंग साहब को शायद पता नहीं कि पुराने जमाने में औरतें मेनापॉज तक बच्चे पैदा करती जाती थीं। क्योंकि रोकने का कोई साधन ही नहीं था। आठ-आठ, दस-दस की लाइन लग जाती थी। पर वे सब बच्चे नॉर्मल होते थे। हाँ, माँ की हालत जरूर दिन ब दिन खस्ता होती जाती थी।

मैंने यह अपेक्षा कभी नहीं की थी कि इस खबर को पाते ही आप खुशी से झूम उठेंगे। क्योंकि जानती हूँ। यह आपकी पहली सन्तान नहीं है। पर आप इतने गमज़दा हो जायेंगे यह नहीं सोचा था। मुझे फुसलाने के लिये कैसे कैसे तर्क आपको सूझ जाते हैं। पर आपको बता दूँ मि.कुमार- मैं बेवकूफ नहीं हूँ कि आपके बहकावे में आकर इस ईश्वरीय सौगात को लौटा दूँ। सो.मि.कुमार! नाऊ....

- पहले वाली दोनों लड़कियां ही है वो डर लगता है- एक और लड़की आ गई तो?'

'तो क्या ?'

इन दोनों की पढ़ाई और शादी के बाद तीसरी के लिये मेरे पास कुछ नहीं बचेगा।'

'मैं कमा रही हूँ न। सब सम्हाल लूँगी।'

- जुड़वा भी हो सकती है।

होने दीजिये। जैसे पलक और महक पल गई- वे भी पल जायेंगी फॉर ए चेंज बेटा भी तो हो सकता है।

बेटे का मैं क्या करूँगा। उसके जवान होने तक तो मैं बूढ़ा हो जाऊँगा।'

तो वह आपके बुढ़ापे की लाठी बन जायेगा। लोग इसी दिन के लिये तो बेटे की कामना करते हैं।'

मतलब तुम्हारे पास हर बात का जवाब है, इन्होंने खीजकर कहा।

मेरे पास हर बात का जवाब है क्योंकि मैं सकारात्मक ढंग से सोचती हूँ। पाजीटिव अप्रोच रखती हूँ। आप हर बात को नकारात्मक ढंग से देखते हैं, सोचते हैं। ऑफिस में भी आपने यह बात बड़े मायूस अन्दाज में की होगी। तभी लोगों ने आपको इतने भयानक उदाहरण दिये। कॉलेज में तो मुझ पर बधाइयों की वर्षा हो गई थी। जबकि मैंने सिर्फ इतना बताया था कि मैं डॉक्टर के यहाँ से आ रही हूँ।

एक सवाल तो अब भी मुझे परेशान कर रहा है।

कौन सा ?

लड़कियाँ छुट्टियों में आयेंगी तो मैं उन्हें यह खबर कैसे दूँगा, वे कैसे रिएक्ट करेगी।'

वो मुझ पर छोड़ दीजिये। माना कि हम लोगों के सम्बन्ध नितान्त औपचारिक हैं, हम लोगों के बीच कोई संवाद नहीं है- पर मैं सम्हाल लूँगी। पर एक बात जरूर कहूँगी। कहाँ तो आप चाहते हैं कि मैं उन्हें माँ का प्यार दूँ। पर आपने मुझे उनसे कभी जुड़ने ही नहीं दिया। इतने दिनों तक बुआजी की कैद में थी। उनके जाते ही आपने लड़कियों को होस्टल भेज दिया।

उन दोनों की ही जिद थी कह रही थी कि हमारा बारहवीं का साथ है। हम शांति से पढ़ना चाहती हैं।

तो आपको कहना था कि यहाँ उनकी शांति भंग करने वाला कोई नहीं है। जो थी वे अपने घर चली गई है। पर आपने मना नहीं किया। क्योंकि आप भी बच्चों के सामने मेरे साथ कम्फर्टेबल नहीं हो पाते थे।

उसी कम्फर्ट झोन का नतीजा भुगत रहा हूँ मैं ''इन्होंने कहा और एकदम उठकर चल दिये। मैं देखती रह गई। पिछले आठ दस दिनों में यह आदमी कितना बदल गया है। या यही इसका असली चेहरा है। नये नवेले प्रेम के उन्माद में मैं तब इतना खो गई थी कि सब कुछ रंगीन नजर आ रहा था। इतनी जल्दी मोहभंग हो जायेगा यह नहीं सोचा था।

000

ये ऑफिस से लौटे तब मैं तैयार होकर हॉल में बैठी थी। बोले- 'अभी अभी आई हो?'

''मैंने सिर हिला दिया। बोली नहीं। ये कुछ देर तक मुझे देखते रहे फिर बोले- इतना ड्रेसअप होकर कॉलेज जाती हो?''

''थैंक गॉड। आपका ध्यान तो गया। श्रीमानजी मैं मंदिर जाने के लिये तैयार हुई हूँ। माँ का आदेश था, शादी के बाद पहली बार दर्शनों के लिये जा रही हो- खूब सज सँवर के जाना। किसके दर्शनों के लिये जा रही है।

मातारानी के। नवरात्री चल रही है कुछ पता भी है!

और माँ का आदेश है कि अकेली मत जाना- जोड़े से जाना। इसीलिये आपकी प्रतीक्षा कर रही थी। चलेंगे न।''

वे थोड़ी देर सोचते रहे। फिर बोले- चाय पी ले? फिर चलते हैं।

मैं इतना खुश हो गई थी- पूरे रास्ते चहकती रही- पता है, पहले मैं पूरे नौ दिन तक व्रत रखती थी। बिना नमक का खाती थी। सुबह सबेरे माता के दर्शनों के बाद ही चाय पीती थी। इस बार उपास के लिये सबने मना कर दिया था तो मेरा नित्य दर्शन का नियम भी टूट गया।

जैसा कि अनुमान था, मन्दिर में भीड़ तो थी पर रात के मुकाबले में कम थी। इसीलिये मैंने यह समय चुना था। इत्मीनान से पूजा हो सकी। मैं जब पंडितजी से थाली लेकर उसमें साड़ी चूड़ा, बिन्दिया, नारियल, मिठाई, माला और पैसे रख रही थी ये लगातार मुझे घूर रहे थे।

पूजा करके बाहर आने पर मैंने कहा- देव दर्शन के बाद थोड़ी देर बैठने का विधान है। कहीं बैठ लें?

मुझे सीढ़ियों पर बैठना बहुत अच्छा लगता है।

पर इस समय वह असम्भव था। भक्तों का रेला सा चला आ रहा था। फिर मुझे याद आया- नीचे कुंड के पास दीवाल से लगी पत्थर की बैंचे हैं। सौभाग्य से एक खाली मिल गई। हमने वहीं आसन जमा लिया।

सो- थॅक्स गिव्हिंग अच्छे से सम्पन्न हो गया

मैं चौक पड़ी- आपने अभी कुछ कहा

यही कि धन्यवाद ज्ञापन अच्छे से हो गया।

धन्यवाद कैसा? माँ ने कहा था शादी के बाद पहली बार जा रही हो तो मातारानी को साड़ी जरूर चढ़ाना। वैसे भी हमारे यहाँ भगवान के दर्शन खाली हाथ नहीं किये जाते। आपके यहाँ का पता नहीं।'

क्यों? हम, क्या हब्शी है ?

तो फिर ऐसा क्यों कह रहे हैं। धन्यवाद की बात आपका मन मैं कैसे आ गई?

मुझे लगा तुमने मन्नत माँगी होगी। जिसे पूरा करने के लिये आई हो।

- मैंने कोई मन्नत नहीं मानी थी। यह तो एक नित्य नैमित्तिक कार्य था। पर अब जब आपने बात उठाई ही है तो आपको साक्षी रखकर एक मन्नत माँग लेती हूँ- माताजी जिस दिन अपने बच्चे को गोद में लेकर दर्शनों को आऊँगी पूरे ग्यारह सौ लड्डूओं का भोग चढ़ाऊँगी।

-प्लीज़! बेटे की मन्नत मत मांगना।

''मैंने तो बेटा बेटी ऐसा कुछ भी नहीं कहा। केवल बच्चे को लेकर आने की बात की थी- और आपको बेटे से परेशानी क्या है?

बेटा हो गया तो पलक महक यही सोचेंगी कि मैंने बेटे के लिये दूसरी शादी की है।'

उनकी इस बात पर मुझे गुस्सा आना चाहिये था- रुलाई आनी चाहिये थी पर उलटे हँसी ही आ गई।

-मान गये मि.कुमार, आपको मान गये। आपके दिमाग की सचमुच दाद देनी पड़ेगी। ये रोज़ नये नये फंडे आप कहाँ से ले आते हैं।'

कैसे फंडे? वे गुर्राये

मैंने यह अपेक्षा कभी नहीं की थी कि इस खबर को पाते ही आप खुशी से झूम उठेंगे। क्योंकि जानती हूँ। यह आपकी पहली सन्तान नहीं है। पर आप इतने गमज़दा हो जायेंगे यह नहीं सोचा था। मुझे फुसलाने के लिये कैसे कैसे तर्क आपको सूझ जाते हैं। पर आपको बता दूँ मि.कुमार- मैं बेवकूफ नहीं हूँ कि आपके बहकावे में आकर इस ईश्वरीय सौगात को लौटा दूँ। सो.मि.कुमार! नाऊ.... 'यें क्या तबसे मिस्टर कुमार लगा रक्खा है? वे एकदम हत्थे से उखड़ गये थे।

मैं क्या करूँ। मुझे लग रहा है जैसे मैं किसी अजनबी के साथ यहाँ बैठी हूँ। पिछले कुछ दिनों से मुझे ऐसा लग रहा है जैसे मैं किसी अनजान व्यक्ति के साथ रिलेशनशिप में हूँ। और यह फीलिंग मुझमें बड़ी गिल्ट भर देती है। मैं अपराध बोध से ग्रस्त हो जाती हूँ मि.कुमार!

क्या बकवास कर रही हो?

सच कह रही हूँ। इन आठ दिनों में आप कितने बदल गये हैं- आपको इस बात का एहसास नहीं है जिस व्यक्ति से मैंने शादी की थी वह व्यक्ति कोई और ही था।

शादी के बाद कई लोगों का मोहभंग हो जाता है क्योंकि सबकुछ मन जैसा नहीं हो पाता। पर मेरा मोहभंग इतनी जल्दी हो जायेगा इसकी कल्पना नहीं थी।

शुरूआत शायद शादी के दिन से ही हो गई थी। मेरे घर में उस दिन उत्सव का सा वातावरण था। जिन लोगों के लिये मैंने इतने दिन वैराग्य धारण कर लिया था, वे मेरे भाई बहन मुझे वधु वेश में देखकर आनन्द विभोर हो रहे थे। बड़ी बूढ़ियां आशीर्वादों की झड़ी लगा रही थी। कह रही थी- बिटिया। शादी में पहले ही बहुत देर हो गई है। अब बाकी काम जल्दी से निबटाना। और देर मत करना।''

वहाँ से बिदा होकर आई तो यहाँ का माहौल एकदम विपरीत था। बहुत ज्यादा धूमधाम की मैंने आशा नहीं की थी- पर यहाँ आकर ऐसा लगा जैसे अभी अभी यहाँ से कोई अर्थी उठी हो। घर में 10-15 लोग थे उनके चेहरे से लग रहा था जैसे मातम पुरसी पर आये हों। जिन देवीजी ने मुझे आरती उतारकर भीतर लिया वे मानो किराये पर लाई गई थीं। न कोई ललक, न कोई उत्सुकता- चेहरे पर मुस्कुराहट तक नहीं थी। बस उन्होंने एक रस्म अदायगी सी कर दी। जश्न का माहौल न सही पर दरवाजे पर एक बिजली की झालर तो लगाई जा सकती थी। मेरे स्वागत में चार सुहागिनो को लड्डू तो बाँटे जा सकते थे। किसी ने हमारा कमरा तो ठीक किया होता। मैं सजाने की बात नहीं कर रही हूँ। पर ठीक तो किया जा सकता था।

मैं साँस लेने के लिये रुकी। लगा ये अब कुछ कहेंगे। पर चुपचाप मुझे देख रहे थे।

घर में जितने लोग थे- सबने जैसे एक राय बांध ली थी। सबने मुझे आशीर्वाद दिया- खुश रहो। अष्टपुत्रा सौभाग्यवती वाला आशीर्वाद आजकल कोई नहीं देता, जानते हैं। पर नई दुलहन को कम से कम- फलो-फूलो तो कह सकते थे। वे लोग कोई ऋषि मुनि तो थे नहीं कि उनके कहते ही बच्चों की लाईन लग जाती। ओर आपकी परमपूज्य बुआजी

वे तो बहुत ही महान निकलीं।

क्यों? बुआजी ने क्या किया ?

उन्होंने आशीर्वाद दिया- जो है उन्ही में खुश रहो। वे यहाँ दो महिने थीं। मैंने जब भी किसी मौके पर प्रणाम किया उन्होंने यही आशीर्वाद दिया। जिस दिन वे गई, मेरे प्रणाम करने पर उन्होंने यही आशीर्वाद दोहराया। आखिर मैंने पूछ ही लिया। 'बुआजी' इसका मतलब तो समझाती जाइये।' तो बोलीं- ये जो दोनों बच्चियाँ हैं न, अब इन्हीं से सन्तोष रखो- बस।

उनका यह बस मेरे कलेजे में शूल की तरह गड़ गया। मि.कुमार! माँ बनना हर औरत का अधिकार है। उसे छीनना, उसके स्त्रीत्व का अपमान करना है। मैं यह अपमान कभी सहन नहीं करूँगी। बच्चे को जन्म देना है या नहीं यह तय करने का अधिकार सिर्फ मुझे है। इसमें किसी की दखलंदाजी नहीं चलेगी।

और अब मेरा निर्णय सुन लीजिये। यह बच्चा इस दुनिया में आकर रहेगा अगर आपके घर में उसके लिये जगह नहीं है तो मैं कहीं और चली जाऊँगी, वैसे भी मैं उसे ऐसे वातावरण में जन्म देना चाहती हूँ जहाँ उसका प्रेम से स्वागत हो। उसके जन्म पर खुशियाँ मनाई जायें, बधाइयॉ गाई जायें, मिठाईयाँ बांटी जाये। आपके घर में तो उसके आने से मातम ही होगा।

इसके बावजूद आपको कोई असुविधा हो तो बता दीजिये। मैं बिना शर्त आपको आजाद कर दूंगी। बस एक विनति है। इस बार जिस केयर टेकर को आप घर में लायेंगे उसे पहले से समझा दें।

और मैं उठकर खड़ी हो गई

नाऊ द चॉइस इज युअर्स मि.कुमार। अपने निर्णय से मुझे शीघ्र अवगत करायें।

और मैं पलट कर चल दी। मैंने मुडकर देखा भी नहीं कि वे पीछे आ रहे हैं या नहीं। मेरे जीवन में अब उनकी कोई अहमियत नहीं रह गई थी। यह शादी मैंने अपने अकेलेपन को बॉटने के लिये की थी।

पर अब मैं अकेली कहाँ थी!

'स्नेहबंध' 50, दीपक सोसायटी, चूना भट्टी कोलार रोड
भोपाल- 462016 (मध्यप्रदेश) दूरभाष -0755-2461638
मोबाइल : 099930-68007

//हार्दिक बधाई//

प्रख्यात कथाकार **ममता कालिया** को उनके उपन्यास ''दुक्खम-सुक्खम'' पर वर्ष 2017 के ''व्यास सम्मान' दिये जाने के निर्णय पर समावर्तन परिवार की ओर से हार्दिक बधाई।

भूल सुधार

तकनीकी त्रुटि के कारण दिसम्बर 2017 के कथाराग में नवीन सागर की कहानी 'लड़की' की अंतिम पंक्ति **''उसने स्वीटी को हराया नहीं है।''** इसी तरह प्रसिद्ध कवि कुँवरनारायण को श्रद्धांजलि वाले पृष्ठ पर उनका जन्म **'19 सितम्बर 1927'-** के स्थान पर 19 सितम्बर 1997 प्रकाशित हो गया है। पाठकों से अनुरोध है कि कृपया तदनुसार पाठकों को हुई असुविधा के लिए हमें खेद है... पढ़ने की कृपा करें। - का.सं.

स्त्री-विमर्श के बुनियादी मुद्दों का वास्तविक स्वरूप और लेखकीय कोशिशों की ऊँचाइयाँ.

(प्रसंग में महत्त्वपूर्ण लेखिका वीणा सिन्हा की कहानी चुनमाई)

यह एक उदास कर देने वाली दुःख भरी कहानी है। नये वर्ष की शुरूआत एक ऐसी दारुण दुःखद कथा से हो रही है, यह अजब बात है, हमारे आनंदमार्गी और आकांक्षी सनातन समाज के अर्जित उसूलों और निर्धारित परम्पराओं के एकदम खिलाफ, लेकिन यह मेरी मजबूरी भी है। इस गहरी तकलीफ का बयान किए बगैर इस सदी के किसी वर्ष को आगे नहीं बढ़ना चाहिए। इस समय और समाज को कम-अज-कम उस पाप और अभिशाप का अहसास तो होना चाहिए जो उसके माथे पर अभियोग की काली स्याही से पुत चुका है।

दरअसल अब हमें अपने ऐसे किन्हीं कलंकों से फर्क भी नहीं पड़ता। हमने उन्हें सहजता से स्वीकार कर लिया है। उनकी तरफ देखना बन्द कर दिया है। मानकर चलते हैं कि ऐसे दाग स्थायी हैं, इनका कोई निराकरण नहीं और यह सब सभ्यता के साथ चलते ऐसा ही चलता रहेगा। पहले कभी इन बातों पर काफी हो-हल्ला हुआ करता था लेकिन अब सब बन्द हो चुका है। इनसे बचने के लिए हमने कुछ नये दुःख और रंज ढूंढलिए हैं जो हमें चिंतित कर भरसक आनंदित भी करते हैं। यह शुतुरमुर्ग की पुरानी परम्परा का नया समाजीकरण है और हमें कोई ऐतराज भी नहीं है।

लेकिन बराबर से बचकर गुजर जाने वाले साहित्यकारों में वीणा सिन्हा नहीं हैं। वे अपने सामाजिक सरोकारों और उसकी जिम्मेवारी को शिद्दत से महसूस करती हैं और बिना किसी लाग-लपेट के, एक साधारण तरीके से असाधारण बात कह देती हैं जो हमें वेदना और पीड़ा से ना केवल भर देता है बल्कि बहुत कुछ ऐसा सोचने पर मजबूर कर देता है जिसे भुलाये जाने की हमने भरपूर तैयारी कर रखी है। यह कहानी, कहानी नहीं, एक सुलगता दस्तावेज है जो हमारी आत्मा तक आँच तो पहुँचाता है, मगर झुलसाता नहीं, क्योंकि सदियों के अभ्यास ने ना केवल हमारी चमड़ी बल्कि आत्मा को भी कड़ा और कठोर बना दिया है।

वीणा जी की कहानी 'चुनमाई' का कथ्य जाना-पहिचाना है लेकिन जिस कोण और कायदे से कहानी को कहा गया है, वह अनूठा और अनुपम है। बहुत कच्ची उमर से देह के व्यापार में डाल दी गई एक मासूम बच्ची अपने साथ किए जा रहे अमानुषिक सामाजिक सुलूक को और उसकी भयावहता को उस तरह से समझ ही नहीं पाती, बल्कि वह एक अकेले सच को जान पाती है कि क्या एड्स भूख से भी खराब बीमारी है चुनमाई ! और यह कितना वीभत्स सच है ! ! !

यह समाज के उन सब अलमबरदारों के मुँह पर एक जोरदार तमाचा है जो कौम के गम में दिन और रात एक किए दे रहे हैं और खुश हैं कि हम विकास के रास्ते पर बजरिये बुलैट ट्रेन लगातार आगे बढ़रहे हैं। यह उन लोगों के लिए भी एक आइना है जो अपनी गौरवशाली परम्पराओं के पीछे से झांकते कलंकित इतिहास को नहीं देख पा रहे हैं और एक प्रायोजित उन्माद में अपने अदृश्य अंत की ओर आनंदपूर्वक बढ़ते जा रहे हैं। यह कहानी उस हर मां और बाप के लिए के सोच के दरीचों को खोलती है जो आज अपनी आस-औलाद को घर-आँगन में फलते-फूलते देख मगन हो रही हैं लेकिन कल का भयावना सच उन्हें भी इसी बच्ची के नसीब तक कब पहुँचा दे, कोई नहीं कह सकता। हम एक आग पर कालीन बिछाकर बैठे हैं और उस नरक को महसूस ही नहीं कर पा रहे जो हमारी बच्चियों को जलाकर खाक कर देने वाला है।

हम सिर्फ चुनाव और राजनीति के खेल में, उसकी पेंचीदगियों, हरामजदगियों में मुब्तिला हैं जहाँ कोई जनेऊ उतार रहा है, कोई पहिन रहा है। कोई जाति की दुहाई दे रहा है तो कोई धर्म पर मर-मिटने की टेक पर पड़ोसी को मार डालने पर आमादा है। रोज नये चोंचले हैं, किस्से-कवायदें हैं और झूठ के भीतर झूठ की सतहें हैं लेकिन मनुष्य का दुःख किसी को भी आहत नहीं करता। इस कदर गरीबी, भूख, दरिद्रता, गैर-बराबरी और उसके हमराह भीषण शोषण, अन्याय और दमन है जिसने सदियों से जीवन को एक जीवंत मजाक बना दिया है और हम हैं कि आँखें मूंदकर बैठे हैं। इसी समय के श्रेष्ठ शायर साहिर लुधयानवी ने कहा था कि सनाख्वाने-तस्दीके-मशरिक कहाँ हैं ! (जिन्हें नाज है हिन्द पर वो कहाँ हैं)। लेकिन फर्क यह है कि फर्क पड़ता ही नहीं है। हजारों साल से तमाम किस्म के देवी-देवता, अवतार, साधु-संत, ज्ञानी-ध्यानी, कबीर, विवेकानंद, गांधी, लोहिया सब जन समझा-बता कर चले गए और रफ्तार वही कोल्हू के बैल की तरह है जो अपने दकियानूसी सोच, रवायतों और परम्पराओं के दायरे में उसी तरह चलते रहने के कायल हैं।

लेकिन जो सच्चा लेखक होता है वह जमाने की विपरीत हवाओं के मुकाबिल हथियार नहीं डालता। वह लगातार समाज, सभ्यता और संस्कृति को मासूम आम जन के साथ हो रहे अमानवीय बर्ताव की शर्मिन्दगी के बाबद बताता चलता है। यह एक कोशिश है जो मुक्तिबोध के शब्दों में बहुत ही प्रखरता और मुखरता से व्यक्त होती है कि जो जैसा है, उससे बेहतर चाहिए।

पेशे से एक कामयाब चिकित्सक डॉ. वीणा सिन्हा को उनकी रचना-धर्मिता के लिए कई अवसरों पर पुरस्कृत और सम्मानित किया जा चुका है। उनकी यह रचना इस बात का प्रमाण है कि बेवजह उनकी ओर ध्यान नहीं दिया गया है। उनकी लेखनी में एक तड़प और छटपटाहट है जो एक सार्थक रचना में ढलकर पाठक को भी आकुल और आक्रोशित करती है। वे अपने मिशन में सजग और सतर्क हैं जिसके चलते उनकी लेखकीय कोशिश प्रभावित करती है और वे ऐसे असहय दुःख को हम तक पहुँचा कर हमें फिर एकबारगी इस सामाजिक ताने-बाने की निर्ममता, विद्रूपता और विडम्बनाओं पर सोचने और कोई कारगर कदम उठाने के लिए प्रेरित करने में सफल भी होती हैं। स्त्री-विमर्श के जो नये-नये रंग-रूप सामने लाए जा रहे हैं, विचित्र किन्तु सत्य टाइप के मुद्दे उठाये जा रहे हैं और यह सब करते हुए जो एक खिलखिलाहट आसमान के छोरों तक को झमका दे रही है, उन सब से अलग-थलग यह एक अलहदा आवाज है जो वक्त के बियाबान में अपनी तासीर ढूंढरही है और इस जतन को धार देती है कि स्त्री के साथ जो सुलूक सदियों से किया जा रहा है, उसके बुनियादी कारणों की जाँच-पड़ताल फिर एक बार संजीदगी से की जाए और बदलाव की दिशा में सख्त कदम उठाये जायें।

एक हृदय-स्पर्शी कहानी के लिए वीणा जी को बधाई और आभार। स

मुकेश वर्मा
मोबाइलः 94250-14166

चुनमाई

वीणा सिन्हा

चुनमाई, तुम कितनी अच्छी हो। देखो तो ये लोग कितने बुरे होते है। आज जो गाहक आया था, वह मुझे बिलकुल अच्छा नहीं लगा। कहता था,चुनमाई ने तुमको गलत रास्तें पर डाला है। गलत क्या है चुनमाई तुमसे ही सीखा है कि सुई के झटके में कितना आनंद है। वह कुछ अजीब था। कहता था, तुम यहां से निकल चलो। तुम्हारा किस्सा सबको बताउंगा।

पर मैं किस्सों में कैसे जा सकती हूँ? मैं तो सचमुच हूँ न। किस्सों में घुसने पर हमेशा छूट रहती है कि कभी भी किसी भी जगह दरवाजा बनाकर किस्से की गुफा से बाहर निकल जाओ। या सुनने सुनाने वाले लोग अपने मर्जी से किस्सों से बाहर आने के रास्ते बनाते बिगाड़ते रहते है। मुझे याद है ,जब नानी मुझे उस लड़की का किस्सा सुनाती थी जिसके सौतेले बाप ने उसका मॉस पका कर उस लड़की की मां को खिला दिया था। तब मैं हमेशा सोचती थी अगर मेरा बाप मुझे कभी मारने के लिये पकड़ेगा ,तो मैं उसको पहले दांत से काट खाउंगी और तीर की तरह जंगल में छुप जाउंगी। जहां का एक एक पत्ता मुझे जानता है और मुझसे खूब बातें करता है। या फिर जब वो मां को मेरी खून सनी फ्राक दिखा कर कहेगा कि तुम्हारी लड़की तुम्हारे पेट में है। फिर जब मां पहाड़ में छलांग लगाने जायेगी मैं किसी जादूगर की मदद से जिंदा होकर मां का हाथ पकड़ लूंगी और मां हंसने लगेगी। मैं मां को पहाड़ से कूदने नहीं दूंगी।

पर मैं तो किस्सों में जा नहीं सकती क्यों कि जो जो हुआ है वह हुआ है जो जो हो रहा है वह होता जा रहा है और जो जो होगा वह तो होगा ही। इन सबका किस्सा कैसे बनेगा ?

हॉ, तो मैं उस अजीब गाहक की बात कर रही थी।कुछ गाहक आते हैं और आते ही अपना काम शरू करते हैं। खुश होते हैं ,तो अलग से कितना सारा इनाम दे जाते हैं। उन्हें कैसे खुश करना है ,यह भी तो तुमने ही सिखाया है कि कैसे गाहक के कानों को संतरे की तरह चूसू , या सीने पर घने बालों वाले गाहक के सीने पर अपनी नाक रगड़ते समय यह भूल जाऊँ कि पसीने की तेज गंध से मेरा जी मिचलाता है , वैसे यह बात और है कुछ देर बाद जब मेरी देह में ही गुलाव खिल जाते हैं, तब सारी दुर्गन्ध पल भर के लिये महक बन जाती है। यह तो मैंने तुमसे ही सीखा था कि गाहक की जांघ के अंदरूनी हिस्से को अपनी कानी उंगली से तब तक सहलाउँ जब तक वह अपने होश खोकर मुझे दबोच न ले या जब वह नशे में बिलकुल ही धुत हो तो उसके अंग अंग को अपनी नुकीली जीभ से गुदगुदा कर जगाऊँ। वैसे ज्यादातर मौकों पर होता यही है कि जब वे मुझे देखते हैं, तो कह उठते हैं तुम तो एक दम परी हो , जन्नत की हूर हो , एक दम वैसी हो जैसा हूरों को होना चाहिये। कुछ तो एकदम मेरे कपड़ों पर झपट पड़ते हैं, और जितनी देर रहते हैं , उतनी देर मुझे छोड़ते ही नहीं। बार बार बह जाते हैं और फिर बहते ही न जाने कैसे फिर तुरंत ही उठ कर मुझे फिर भींच लेते हैं। जाते समय कहते जाते हैं, नन्ही परी , जब भी इस शहर में आउंगा तुमसे जरूर मिलूंगा। भूलना मत , यह निशानी रख लो।

कुछ की तो बात ही मत करो , कपड़ों से उलझने में भी समय नहीं गॅवाते, उन्हें फाड़ ही डालते हैं। वैसे लोग बदन को रूई की तरह धुन डालते है। लगता है हड्डियां तोड़ डालेंगे।

पर तुम्ही ने तो सिखाया है न , कि गाहक ही हमारा देवता होता है। उसे खुश रखना ही हमारी पूजा है। मैं तुम्हारा कहा शुरू से ही तो मानती आई हूँ। शायद आठ साल हो गए या उससे भी ज्यादा। यह मुझे भी ठीक से याद नहीं कि तब मेरी उम्र क्या थी ? हो सकता है दस बरस हो या उससे भी कम।

उम्र कहीं लिखी नहीं है। बस इतना सुना था कि एक साल मॉ जब रंगाली बिहू का नाच देखने बस में बैठ कर गुवाहाटी गई थी उसी साल मैं हुई थी। मॉ बहुत खुश होकर बताती थी कि वो मास्माई से शिलांग पैदल चल कर गई थी। फिर शिलांग के पुलिस बाजार में घूम घूम कर खूब रोशनियां देखीं थी। सबसे पहले मॉ ने ही बताया था कि बस जब शिलांग से गुवाहाटी की तरफ जाने लगती है तब घाट पर चढ़ते समय कभी इधर झुकती है और कभी उधर। जब वह बस झुकने से पिताजी पर गठरी की तरह हकबका कर गिर पड़ती थी , तब पिताजी खूब हंस कर उसका लाड़ करते थे।

मॉ को इसलिये भी वह बिहू का त्योहार याद था क्यों कि उस समय पिताजी मॉ को बहुत प्यार करते थे और जोर जोर से हंसते थे। उस समय शराब कभी कभी और थोड़ी थोड़ी पीते थे। और जब भी पीते दो घूँट जबदस्ती मॉ के मुँह में डाल देते थे। यह सब मुझे मॉ ने ही बताया था। सारी बातें मॉ को बाद में बहुत याद आती थीं। जब वह जंगल में मुझे लेकर शहद इकठ्ठा करती थी। उन दिनों पिताजी अक्सर नशे में धुत रहते थे और बाकी समय सुपारी कतर कर खाते थे। काम करना छूट गया था। पड़ोस की चाची मॉ को बताती थी उन पर जंगल की चुड़ैल का साया है जो उनका खून चूस रही थी। पर मॉ को मालूम था ,चुड़ैल कोई और नहीं मॉ के चाचा की बेटी थी, जो मेरा भाई होते समय मॉ की सेवा करने आई थी।पिताजी को शराब पिलाती थी ,खुद भी पीती थी और मॉ बताती है मैं सोते से उठकर उन्हें परेशान न करूँ इसलिये मुझे भी जबदस्ती पिलाती थी।

उस समय की बातें मुझे हल्की हल्की याद है। भाई मॉ के वगल में पड़ा रहता था मॉ एकदम कमजोर होकर सूज सी गई थी।मॉ के दूध से भाई का पेट नहीं भरता था। वह रात रात भर रोता था। पिताजी गुस्से में चिल्लाते थे और भड़ाक से दरवाजा बंद करते थे। कच्ची नींद से जागकर मैंने कई बार देखा था फिर पिताजी मॉ की चाची की लड़की को अपने पास खींच लेते थे।वह नींद से उठकर हॅसती थी। उस समय मुझे पिताजी से डर लगता था और अंधेरे में उनकी सांस की आवाज सुनते सुनते ऑखे कस कर बंद करके मैं गठरी बन कर सो रहती थी।

सुबह मॉ शिकायत करती थी कि उसकी तबियत अच्छी नहीं है तो पिताजी डॉटते थे। घर में मॉस पकता था पहले पिताजी फिर मॉ की चाची की लड़की जी भर के खाते थे और बाजार चले जाते थे। मॉ बड़ी मुश्किल से उठकर मुझे खिलाती थी फिर खुद खाती थी। भाई मॉ की छाती से चिपक कर उसके थन चूसते चूसते थक जाता था। थनों पर मसूढ़े गड़ा कर फटी फटी ऑखो से मॉ को देखता था। मॉ उसका दुःख समझती थी और बताती थी कि जब मैं छोटी थी , तब मैंने मॉ का दूध खूब पिया था। मैं पीते पीते थक जाती थी और मॉ के थनों से दूध टपकता रहता था। उन दिनों पिताजी खुश रहते थे। मॉ से मजाक करते थे इस इतवार को घर की दुधारू गाय को काट डालेंगे क्योकि तुम्हारे रहते गाय की क्या जरूरत, मॉ बताती थी पिताजी की बात सुनकर सब हंसते थे।उन दिनों मां की सेवा के लिये नानी भी जिंदा थी। वह अपने जमाई और बेटी को खूब प्यार करती थी। उसके तीनों बेटे अपनी ससुराल में खुश थे। मॉ ही इकलौती लड़की थी।

पका केला उबाल कर फिर मसल कर खिलाने का काम नानी करती थी। एक बार गांव में एक नर्स आई थी।कहते थे ,उसने शिलांग में ट्रेनिंग ली थी।वह मॉ नानी से कह रही थी इतने छोटे बच्चे को केला खिलाना ठीक नहीं है क्यों कि वह उनके गले में अटक सकता है।

सुपारी थूकते हुए नानी उसकी बात सुनती थी।फिर उसके जाने के बाद भुनभुनाती थी यह कल की लड़की हमको सिखायेगी कि बच्चे को कैसे पालना

है। मेरे आठ बच्चे हुए। चार अभी भी जिदां हैं। और फिर मौसी की लड़की के पांच बच्चों को मैंने संभाला है। ये मुझे क्या बतायेगी। अभी तो खुद भी कुंवारी है। ये क्या जाने बच्चों को क्या खिलाना है ? ??

नानी मुझे अपने ही तरीके से खिलाती पिलाती थी।सारे गांव के लोग कहते थे कि मैं गांव भर में सबसे सुंदर थी। मेरे पांव सबसे छोटे थे और मेरे गुलगुले गालों पर चमड़ी इतनी तनी होती थी कि लगता था छूते ही खून टपक जायेगा।पर जब से नानी मरी और मां बीमार हुई मेरे जानसम पर मैल की परते जमने लगी। मेरे लिये मां ने पलटन बाजार से एक बार एक सुंदर सा लाल फ्राक खरीदा था , जिसमें जगह जगह सफेद फ्रिल थी और सफेद लेस से गले की पट्टी सजी थी वह फ्राक भी पुरानी पड़ गई थी। भाई की देखभाल करती मां को उसकी उधड़ी फ्रिल को सिलने का वक्त ही नहीं मिलता था।

मां की चाची की लड़की मुझे देखकर बुरा सा मुंह बना लेती थी। पिताजी के कान में कुछ खुसपुसाती थी।शायद मेरी गंदी और उधड़ी फ्राक के बारे में कहती हो या जब केले तोड़ते समय उसका जानसम खिसक कर गिर पड़ने पर मुझे हंसी आ गई थी उसके बारे में कहती हो या फिर पिताजी के जाने पर जब मॉ मुझे चिपटा कर रोती थी उसके बारे में बताती हो। पता नहीं , पर उसके बाद पिताजी अपनी लाल लाल आंखो से मुझे देखते थे और गिलास में बची हुई शराब एक घूंट में पीकर मॉ की चाची की लड़की को पकड़ा देते थे। म ु झ े लगता था मेरे पेट में किसी ने गठान लगा दी है और कसता जा रहा है। मालूम होता था, उठ कर जाउंगी तो पेट के ऊपर सीना और सिर अलग गिर पड़ेगा और नीचे का धड़ और पांव अलग हो जायेंगे।

मैं पिताजी को बताना चाहती थी कि कल चावल के साथ मॉ ने खाली पानी पिया था और सब्जी में मॉस का जो आखिरी टुकड़ा था ,उसे शोरबे के साथ उसने मेरे चावल में डाल दिया था। आज पूरा दिन बीत गया है ,जब दो केलों के अलावा मॉ ने कुछ नहीं खाया है।ये वही केले थे जो पड़ोस की चाची ने मुझे चावल खिलाने के बाद अपने पेड़ से तोड़ कर दिये थे। मैं पिताजी से चिपटकर कहना चाहती थी ?? मुझे गोद में उठा लो और वापस मां के पास चलो।?? पर पिताजी तब तक मां की चाची की लड़की को अपनी गोद में सुला चुके होते थे और वह उनकी गोद से सिर उठाने को होती तो उसे फिर दबा देते थे। वह खिला खिला कर हंसती थी। मैं चुपके से रेंग कर मां के कमरे में आ जाती थी।

उसी दिन भाई मर गया था। रोज की तरह मां ने उसे उबला केला मसल कर खिलाया फिर अपना दूध पिलाती रही थी। फिर मॉ को लगा वह सो गया ,तो मॉ धीरे से उठी और मुंह धोकर चूल्हा जलाया।

पिताजी और अपनी चाची की लड़की के कमरे से बाहर आने के पहले वह चावल रांधकर मुझे खिलाना चाहती थी।वह खुश थी कि भाई आज बीच में रोया नहीं वरना पिताजी गुस्सा होकर बाहर निकल आते। वह चूल्हे की ऑच तेज करती रही ताकि चावल जल्दी पक जायें।

मैं मां के पास बैठी थी। मॉ के जानसम से उठती दूध की भीनी भीनी महक सूंघती रही। मॉ के हाथ कितने पीले और पिलपिले हो गये थे। मैं मॉ से और सट गई। फिर उचक कर देखा गंजी का चावल खदक रहा था। धीरे धीरे पानी सूख रहा था और छोटे छोटे गोल गोल छेद चावल की सतह पर बन रहे थे। मॉ की महक के साथ पकते चावल की गंध अब तक भीतर कौंधती है,चुनमाई।तुम भी मेरी मॉ जैसी हो।यह तुम्हीं ने तो मुझे बताया था, जब मॉ की चाची की लड़की के गांव का वह आदमी मुझे तुम्हारे पास छोड़ गया था। मैं तुम्हारे आस पास भी वही दूध की महक ढूंढती रहती थी जिसमें पकते चावल की खुशबू मिली होती थी।

हॉ तो मैं क्या बता रही थी चुनमाई , कि मॉ के पास बैठ कर जल्दी जल्दी चावल खा रही थी गरम गरम मांड़ पी रही थी। नमक के साथ उसे निगल रही थी।मुंह जल गया पर जब निवाला कुछ देर सीने में अटक कर पेट में पहुॅचा तो सांस में सांस आई। मुझे खिला कर मॉ ने चावल में और पानी डाल दिया था आंच धीमी कर दी थी।

मॉ लौटी तो भाई अभी भी सो रहा था। मॉ को कुछ शक हुआ। शक सच में बदल गया जब नीला पड़ गया डेढ़माह का भाई बहुत हिलाने डुलाने पर भी नहीं रोया। उसके भरे भरे ओंठ जो गहरे लाल हुआ करते थे उस समय गहरे नीले थे , उसके खुले हुए नथुनों से झाग बाहर आ गया था।उसकी आंखे खुली थी।मॉ कहती थी ,वह मरने के पहले छटपटाया होगा ,वही छटपटाहट झाग बन कर बाहर आई है। मॉ एकाएक चीख कर रो पड़ी थी।

पिताजी मॉ पर बहुत बिगड़े थे। मॉ को घर से निकाल नहीं सकते थे क्यो कि घर नानी का था।

उदास मां जंगल जाती थी लकड़ी चुनने या शहद लाने। मैं तितलियों के पीछे भागती थी। उन्हें फूलों से उड़कर दूसरे फूलों पर बैठते देखती थी। एक तरह की तितली एक ही तरह के फूलों को कैसे पहचानती थी यह सोचकर मुझे अचरज होता था। जितनी देर मॉ लकड़ी इकठ्ठा करती थी ,उतनी देर तक मैं अलग अलग किस्म के फूलों से अपनी टोकरी भरती थी।

हॉ तो ,बात उम्र की हो रही थी।भला मुझे अपनी उम्र कैसे मालूम होती? गांव में स्कूल भी नहीं था जहां भरती कराते समय कोई मेरे पैदा होने की तारीख के बारे में बात करता।

उसके बाद मां की तबियत खराब होती चली गई थी और मैं सीख गई थी कि चूल्हे में आग कैसे जलाते हैं या चावल और सब्जी कैसे पकाते हैं या धूप निकलते ही कपड़ों को झरने पर धोकर जल्दी से कैसे फैलाते है। मॉ की चाची की लड़की ने मॉ के हिस्से का खाना पकवाना भी बंद कर दिया था। जितनी देर मैं खाना पकाती थी उतनी देर दरवाजे पर बैठ कर सुपारी छिलती रहती थी। पहले तो कई बार हाथ जलते थे। फिर आदत पड़ गई। उसकी नजर बचा कर मॉ को खिलाना मुश्किल होता था।

जब पिताजी खेत से घूम कर जल्दी आ जाते थे ,तब मॉ को मैं मॉड़ पिला आती थी। वह भी उसके गले से उतरती नहीं थी। मॉ का शरीर सूज गया था। उसकी आंखे अब दिखती भी मुश्किल से थीं

रात को मॉ से सट कर सोई थी। सुबह मॉ की चाची की लड़की मुझे झिझोड़ कर जगा रही थी। मॉ शायद रात में ही गुजर गई थी। उसका चेहरा खुले मुंह के कारण अनजाना लग रहा था और उसका अकड़ा हाथ मेरे बालों में उलझा था।

चुनमाई , उस दिन लगा जंगल की सारी तितलियां गुम हो गई है और फूल अपने रंग कहीं छुपा आये हैं। फिर जब तुमने कहा कि तुम मॉ जैसी हो तो लगा तितलियां लौट आयेंगी और शरारती फूल छुपाये हुए रंगों से फिर अपनी पखुड़ियों में रंग भर लेंगे।

उसके बाद तो मॉ की चाची की बेटी के गांव से वह लड़का आया था। उसका चेहरा मुझे बिलकुल अच्छा नहीं लगा पर उसने मुझे पेट भर खाना खिलाया और हाट से लाकर मिठाई भी खिलाई। उसने कहा वह मुझे पुलिस बाजार से नई फ्राक लेकर देगा। वह मुझे टटोल कर मेरी नाप लेता रहा और खुश होकर चाकलेट खिलाता रहा। रात को पिताजी सेा रहे थे। मॉ की चाची की बेटी और वह लड़का बहुत देर तक बाते करते रहे। मुझे नींद आ गई थी।

सुबह मॉ की चाची की बेटी ने खुद ही खाना बनाया था और मुझे झिड़का भी नहीं था। पिताजी को तो जैसे किसी बात से मतलव ही नहीं था। स ु ब ा ह मेरे शरीर पर हाथ फेर कर वह लड़का जगा रहा था।वह छुअन मॉ के हाथ की छुअन नहीं थी ,पर उसमें नफरत और झिड़क भी नहीं थी। वह कहा रहा था उठो , जल्दी चलो। बाजार चलना है।

शिलांग के पुलिस बाजार में मैं उस दिन राजकुमारियों की तरह घूमी थी। मनपसंद चीजें खाई। नये कपड़े पहन कर वहीं पहन लिये। चमकीला कसा हुआ कपड़ा पहना तो लगा कि सीने में सुरसुराहट हो रही है।

इतने सुख इकठ्ठे मुझ पर बरस रहे थे, पर मुझे भीतर ही भीतर बेचैनी हो रही थी। वैसी ही बेचैनी जैसे नीले पड़े छोटे भाई को देखकर हुई थी , जिसके नथुनों से झाग बह आया था। सुखों में बीच में दुःख कहां से घुस आते हैं, चुनमाई , कोई बता सकता है ?

उस दिन मैंने माला भी खरीदी और क्रीम भी। रात को वही लड़का मुझे पुलिस बाजार के पीछे वाली गली के होटल में ले गया। होटल की ऊपर वाली मंजिल पर हमारा कमरा था। इतना बड़ा और गुदगुदा बिस्तर मैंने पहले नहीं देखा था। पेशाव घर से उठती बदबू कमरे में भरी थी। होटल के पीछे फेंकी हुई जूठन की गंध खिड़की से भीतर घुस रही थी। मैं थकी भी थी और ठंड भी बढ़रही थी।। नई शाल ओढ़कर मैं लेट गई थी। कितने रंग थे उस शाल में। एक दम चटक जैसे ताजे फूल हो और मुलायम जैसे गाय का नया बछड़ा हो।

मॉ की चाची की बेटी के गांव का लड़का मेरे पास ही लेटा था। वह धीरे धीरे मुझे सहलाता रहा। कह रहा था कि नये कपड़े कसते है। हौले से उतार कर मेरे बदन के उन हिस्सों को छूता रहा, जिनके बारे में सोच कर ही मेरे कान गरम हो जाते थे , गले में थूक अटकता था और पेट के निचले हिस्से से होकर आग नीचे की ओर फेलती थी। चुनमाई , उसने मुझे तकलीफ नहीं दी थी। वह बस छूता रहा और कहता रहा कि मैं सचमुच सुन्दर हूॅ और धीरे धीरे और भी सुन्दर हो जाउंगी। वे सुनहरे रोम जो मेरी देह को ढकने की कोशिश करते थे उन्हें उसने चूम लिया था।

उसी ने बताया कि चुनमाई बहुत अच्छी है वह मुझे तकलीफ नहीं होने देगी। उसके छूने से मुझे अच्छा लगता था। वह शिलांग से गुवाहाटी लाया। उस घाट के रास्ते पर मुझे मां की बहुत याद आई। मैंने बताया था न ,कि जिस साल में हुई थी उस साल मॉ भी गुवाहाटी आई थी और घाट पर गठरी बन बार बार पिताजी पर गिरती थी।उस समय उमर में मॉ मुझसे कुछ बड़ी ही थी।

मैं भी लुढ़क कर उस लड़के की गोद में गिरती थी।वह हंसता था और मौका देखकर भरी भीड़ में मेरे सीने पर हाथ फेर लेता था।

गुवाहाटी की सड़कों की भीड़ में मैं घबरा गई थी ,पर वही लड़का मुझे पकड़ कर सड़क पार कराता था।उसने सामान रखने के लिये मुझे झोला खरीदवा दिया था।

ब्रम्हपुत्रा का पाट देखकर मेरी आंखे फटी रह गई थी। जंगल के बीच उछलती पतली धार वाली पहाड़ी नदियों और झरनों के बाद इतनी बड़ी ब्रम्हपुत्रा मुझे बॉध गई थी।

कलकत्ता की रेल छूटने में समय था इसलिये उसने मुझे नाव में सैर कराई।नाव से उतरते समय पटरे से मेरा पैर फिसल गया तब उसने मुझे छिछले पानी से उठाया।

जब ब्रम्हपुत्रा भी छूट गई तो मुझे रोना आ रहा था।

चुनमाई , फिर तुमने मुझे अपने घर में रखा था। पहली बार इतना साफ और फूल दार चादर से ढका बिस्तर मैंने देखा था। तुमने मुझे दोनो वक्त भरपेट चावल और मॉस खिलाया था। मछली खिलाई थी। मछली के कांटे से शुरू में मुझे डर लगता था। फिर तुम्ही ने वह डर निकाला।

शुरू में जब तुमने मुझे नस में इन्जेक्शन लगाया तो मुझे लगा भाग जाउं,पर धीरे धीरे अच्छा लगने लगा। मुझे अच्छी तरह याद है , मेरे साथ एक और लड़की थी।वह उम्र में मुझसे कुछ बड़ी थी।वह तुम्हे गाली बकती जाती थी और उसने तुम पर थूक भी दिया था। फिर तुम्हारे साथी उसे जबर्दस्ती पकड़कर ले गये थे। उसकी चीखे गूॅजती रही पर इन्जेक्शन के नशे में डूबने के बाद मुझे कुछ भी याद नहीं है।

दूसरे दिन खाते समय वह लड़की रो रोकर अपने सूजे हुए ओंठ , छिली हुई छातियां दिखा रही थी।उससे दर्द के मारे सीधे चलते नहीं बन रहा था। जब कि तुम्हारा कहा मान लेने से मुझे नहाते समय अपनी जांघों पर खून के दाग देख कर अचरज जरूर हुआ था पर हल्के दर्द के अलावा कोई तकलीफ नहीं थी। इसीलिए मैं तुम्हारा कहा मानती गई।

तुम सच कहना चुनमाई,तुम मुझे चाहती हो न ? मेरे कपड़े कस गये तो तुमने मुझे झट से नये सिलवा दिये थे।

ज्यों ज्यों मेरा बदन निखरता गया तुम्हारा प्यार मुझ पर बढ़ता गया मैंने भी तो तुम्हारा कहा ही किया है।

मैंनें तुमसे कभी शिकायत नहीं की कि छः गाहक निपटाने के बाद मेरी देह में जलन होने लगती है। वैसे भी तुम मेरा खास ख्याल रखती हो। कहीं से एक मलहम लाकर रख देती हो। पहले मैं नहीं समझती थी ,पर अब जब भी काम निपटाने के बाद कोई आता है तो मैं तुम्हें याद करके मलहम उठा ले जाती हूॅ।

हॉ तो कह रही थी कि आज जो ये आखिरी गाहक तुमने भेजा था ,वह मुझे बहुत अजीब लगा। वह कह रहा था ??यह नरक है और तुम्हारी चुनमाई इसकी चौकीदार है।??

वह कह रहा था ??नशे की लत खराब होती है।??

पर तुम्ही बताओं बिना नशे के मुझे तितलियों की उड़ाने कैसे याद रहेंगी और जंगल की महक मुझमें से कैसे उफनेगी ?

वह एक बात और कहता था कि इस नरक से मैं एड्स जैसा रोग लेकर जाउंगी।

अंत में एक बात बताओं चुनमाई ,एड्स होने पर जो तकलीफ होती है क्या वह उस तकलीफ से से ज्यादा होती है जब किसी के बगल में सोती हुई मॉ सिर पर हाथ रखे रखे ही मर जाये या तीन दिन खाली पेट रहने के बाद आती उल्टियों में पेट की गरमी से खून की नसे फट जायें ?

क्या एड्स भूख से भी खराब बीमारी , चुनमाई ?

चुनमाई , तुम तो बहुत अच्छी हो। वह आखिरी गाहक ही अजीव था। मुझसे कहता है इस नरक से निकल चलो।

पर ये नरक तो नही है न ? स

वीणा सिन्हा

जन्म : 24 अगस्त 1957 बस्तर (छत्तीसगढ़) के छोटे से गांव सुकुमा में।

शिक्षा : प्रारंभिक शिक्षा इंजीनियर पिता के तबादलों के साथ मध्यप्रदेश के गांवों व कस्बों में हुई। स्वर्ण पदकों के साथ स्त्री रोग विज्ञान में एम.डी. की उपाधि ली।

लेखन : कविता हमेशा लिखी है। पिछले 9-10 वर्षों से विभिन्न प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित।

पहला काव्य संकलन : 'तुम्हें जाना है मैंनें' वाणी प्रकाशन दिल्ली से प्रकाशित। पहले उपन्यास 'पथ प्रज्ञा' की पाण्डुलिपि को आर्य स्मृति साहित्य सम्मान से अखिल भारतीय दिव्य पुरस्कार सपनों से बाहर उपन्यास सुबह की धूप कविता संग्रह शिल्पायन दिल्ली द्वारा प्रकाशित। कन्या भ्रूण हत्या को समाज में रोकने के लिए प्रयास रत्न।

सम्प्रति : उपसंचालक राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन के पद पर पदस्थ हैं।

उमेश महादोषी

चिन्गारी

शहर के दूसरे इलाकों में घूमते आवारा लड़कों के ग्रुपों की तरह उन पांच-सात का भी अपना ग्रुप था, जिसे रामगंज के इलाके में किसी रोड, चौराहे या मोड़ पर शाम को तीन से पाँच बजे के बीच लड़कियों पर अश्लील फब्तियाँ कसते या उनका पीछा करते देखा जा सकता था। इनका टैरर इतना था कि कभी-कभार गश्त देने वाले सिपाही भी तमाशबीन बने नज़र आते थे। इस इलाके में रामगंज इन्टर कॉलेज के साथ सर्व धर्म डिग्री कॉलेज भी था, जिसमें लड़कों के साथ अनेक लड़कियाँ भी पढ़ती थीं। दोनों कॉलेजों में छुट्टी शाम चार बजे के करीब होती थी। आखिरी पीरियेड खाली होने पर बच्चे जल्दी भी निकल जाते थे।

आज सर्व धर्म डिग्री कॉलेज के सामने वाले चौराहे पर खड़े ये सब जाती हुई लड़कियों पर फब्तियाँ कस रहे थे और डरी-सहमी लड़कियाँ चुपचाप चली जा रही थी। तभी वैशाखी की खट-खट ने इसका ध्यान खींचा। वह लंगड़ा इन्हीं की ओर चला आ रहा था। चेहरे से लग रहा था जैसे आवेश से भरा हो। पास आते ही एक ओर थूकते हुए बोला, ''साले नपुंसक भेड़िये कहीं के!'' सुनते ही भड़ककर गरियाते लड़के उसकी ओर लपके, ''आज तुझी से निपटते हैं साले लंगड़े भिखारी!''

लंकड़ा भी कोई कम नहीं था। वैशाखी के सहारे एक ओर टिककर खड़ा हो गया। थैले को ठीक से सम्हाला और दूसरे हाथ में हमेशा पकड़े रहने वाली लाठी को सिर से ऊपर घुमाकर बोला, ''आओ, मैं भी तो देखूँ कि एक लंगड़े-अपाहिज से लड़ने के लिए कुछ ताकत तुममें बची भी है या सारी की सारी अपनी बहनों जैसी इन मासूम लड़कियों पर फब्तियाँ कसने में ही जाया कर दी है!'' लाठी का घूमना और लंगड़े का साहस देखकर क्षण भर के लिए लड़के ठिठक गए। उन्होंने लोगों से सुन भी रखा था कि गज़ब की ताकत है इस लंगड़े में। फिर उनमें से एक बोला, ''देख लंगड़े, हमारे बीच में टांग मत अड़ा, नहीं तो यह जो तेरी एक टांग बची है, इसे भी हम आज उखाड़कर फेंक देंगे किसी गंदे नाले में।''

''हाँ, हाँ, दम है तो आकर उखाड़ ले जा! एक टाँग गई तो तुम्हारे उस बाप...रज्जन विधायक का पूरा साम्राज्य उड़ाकर अपने साथ ले गई, दूसरी जायेगी तो तुम सबकी जिन्दगी को मौत से बदतर बनाकर जायेगी।''

रज्जन काण्ड से इन लंगड़े का कोई लिंक है, सुनकर वे सब चौंके। एक ने पूछ लिया, ''रज्जन कान्ड से तुम्हारा क्या लेना-देना?''

''क्या करोगे जानकर? तुम तो इस लंकड़े का काम तमाम करो और जाकर मजे लूटो। अरे कम्बख्तो, क्यों नहीं सोचते कि इन मासूम लड़कियों में किसी दिन तुममें से किसी की बहन भी हो सकती है, कोई रिश्तेदार भी हो सकती है। बहुत सी तुम्हारी हम-उम्र हैं, हो सकता है एक दिन इन्हीं में से किसी से तुम्हारी शादी भी हो। क्या मिलता है तुम्हें इन व्यर्थ की फब्तियों से? तुम फब्तियाँ कसते हो और इसी की आड़ में गन्दी नाली के कीड़ा बने रज्जन जैसे नेता अपने आदमियों से इन्हें उठवाकर इनका जीवन नष्ट कर डालते हैं। तुम लोग छोटी-छोटी हरकतें करके बदनामी अपने और अपने माँ-बाप के सिर चढ़ाते हो जबकि बड़ा अपराध कोई और करता है और बचस निकलता है। वो साला रज्जन भी जाने कितनी लड़कियों का जीवन बर्बाद कर चुका था। उस दिन भी करीमगंज चौराहे पर उसी के आदमियों ने तोशी नाम की उस लड़की को उठाया था। मैं वहीं था सो झगड़ पड़ा था। पर उन पाँच को परास्त नहीं कर पाया। वे मुझे भी गाड़ी में डाल ले गये थे, बतौर सजा मेरी टांग तोड़कर नौताला पुल के पास की झाड़ियों में फेंक गये थे। मेरे पास मोबाइल था जिसका उन्हें पता नहीं चल सका। मैं वहीं से अपने दोस्त को फोन करके बुलाकर अस्पताल पहुंचा उथा। भय की वजह से अपनी पहचान छुपाने की गर्ज से एक पीसीओ से मीडिया वालों को गाड़ी के नम्बर सहित घटना की पूरी जानकारी देकर लड़की को बचाने का आग्रह किया था। परिणाम सबके सामने है। रज्जन लड़की के साथ रंगे हाथों पकड़ लिया गया था। उसकी विधायकी तो गयी ही, सर्वस्व स्वाहा हो गया। तुम लोग सोचो क्या रखा है इन छिछोरी हरकतों में। जो समय और ऊर्जा तम इस तरह की हरकतों में जाया करके बदनामियाँ मोल लेते हो, उसी से इन मासूम लड़कियों की सुरक्षा का माहौल बनाकर शहर भर में अपना और अपने माँ-बाप का नाम रौशन कर सकते हो...।''

अब तक लड़के शिथिल पड़ चुके थे। एक दूसरे की ओर देखने लगे, बात तो लंगड़ा ठीक कहता है। आखिर हमें मिलता क्या है इन बेहूदी हरकतों से!... कुछ क्षण वे सोचते रहे। अब तक सभी लड़कियाँ भी निकल चुकी थीं। वे भी चले गये।

अगले दिन लोगों ने देखा, शाम तीन बजे वही लड़के लड़कियों की सुरक्षा के पक्ष में नारे लगाते हुए जुलूस निकाल रहे थे। उनके हाथों में सकारात्मक नारों से लिखे छोटे-छोटे पोस्टर थे। पाँच-सात से शुरू हुआ जुलूस डेढ़-दो घंटे में ही पाँच-सात सौ के समूह में बदल चुका थां कुछ ही दिनों में सकारात्मक ऊर्जा की यह चिन्गारी शहर के हर हिस्से में फैल चुकी थी। जो लड़के शाम तीन से पाँच बजे के बीच लड़कियों से छेड़खानी करते घूमते थे, वे अब सड़कों पर उनके लिए सुरक्षा का वातावरण बनाते देखे जा रहे थे। लेकिन ढूंढने पर भी वह लंगड़ा शहर में दिखाई नहीं दे रहा था।

कुछ दिन बाद लोगों ने अखबारों में पढ़ा- संपतपुर से चली बदलाव की स्वतः स्फूर्त- सी वह हवा आंचलगढ़शहर में भी फैल चुकी है। स

'पूतना बोध'

''हमारा प्यारा बाबा अब दूधू पियेगा...'' कहती हुई बच्चे के ऊपर झुकी आया का काम करने वाली लड़की दूध की बोतल पलंग पर लेटे हुए बच्चे के मुँह तक ले गई। बच्चे के मुँह में निप्पल लगाने से पहले आनक रुकी। उसने बोतल में भरे दूध पर एक ललचाई नज़र डाली। कुछ देर ठहरी, इधर-उधर देखा और निप्पल सहित बोतल का ढक्कन खोलकर बच्चे के मुँह में लगाया और बोतल का खुला मुँह अपने मुँह की ओर ले जाने लगी। इस दृश्य की ओर टकटकी लगाये बच्चे के मुँह में दूध नहीं पहुँचा तो अचानक उद्विग्न होकर रोने लगा। उसके मुँह से निप्पल, निकलकर अलग हो गई। उसने अपने हाथ-पाँव फेंकने शुरू कर दिए। इससे पहले कि आया बोतल को अपने मुँह में लगा पाती, बच्चे का फेंका हुआ एक हाथ जोर से बोतल से टकराया और दूध को बिखेरती बोतल छिटककर दूर जा गिरी। ठीक इसी समय बच्चे का एक पैर आया की आंख के पास जा लगा और उस जगह को सहलाती हुई आया चीख पड़ी। एक साथ बच्चे के जोर-जोर से रोने और आया के चीखने की आवाजें सुनकर बच्चे की माँ बाथरूम से दौड़ी-दौड़ी आई, ''क्या हुआ...क्या हुआ मेरे बच्चे को।'' अन्दर आते ही बदहवास सी माँ ने बच्चे को गोद में उठाकर सीने से चिपकाया फिर कमरे के पूरे परिदृश्य पर दृष्टि डाली। कहीं निप्पल कहीं बोतल, बिखरा हुआ दूध और दूध से भीगे आया के कपड़े; अजीब सी स्थिति को समझने में उसे कुछ क्षण लगे, कुछ-कुछ उसकी समझ में आया। अचानक उसके मुँह से निकला, 'पूतना कहीं की...'' ''ऐ माई, पूतना क्यों कहती है मुझे। मेरे को दोष क्यों देती है? मेरे पै विश्वास नहीं है तो बच्चे की देखभाल (को दूध पिलाने) की जिम्मेवारी काहे को देती है मुझे।'' पकड़े गए झूठ को गटकती हुई वह लड़की बोली। ''हाँ, यही तो गलती हो गई मुझसे, जो तुझे अपने बच्चे की छोटी-छोटी जिम्मेवारियाँ भी...'' कहते हुए बच्चे को कसकर अपनी छाती से चिपका लिया ...''तेरा भी क्या कसूर! जो जिम्मेवारी माँ होने के नाते मुझे ही निभानी चाहिए, वह भी तुझे सौंप दी तो यह तो होना ही था... और मरी तुझे दूध पीने की इच्छा थी तो मुझे तो कहती...''। बच्चा रोये जा रहा था। बच्चे को चुपाने की कोशिश कराती माँ निप्पल और बोतल को उठाने लगी। आया एक ओर सिर झुकाये खड़ी थी। स

121, इन्द्रापुरम, निकट बीडीए कॉलोनी,
बदायूँ रोड, बरेली-243001, उ.प्र./मो.9458929004

काव्यराग 14

समावर्तन के अधबीच कविता केन्द्रित विशेष अर्द्धवार्षिक स्तम्भ

परामर्श : **निरंजन श्रोत्रिय**
विशेष सम्पादक : **श्रीराम दवे**

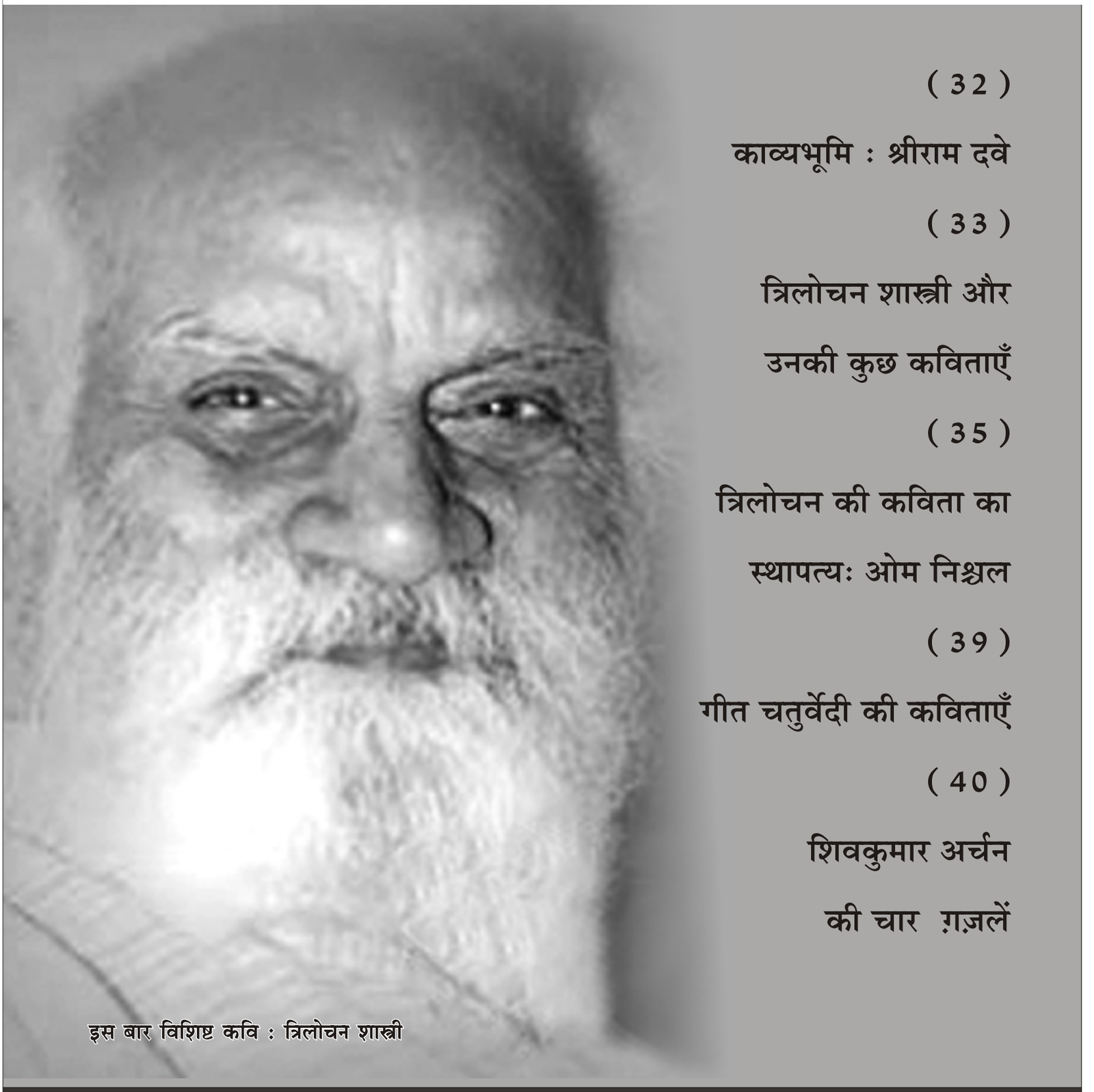

(32)

काव्यभूमि : श्रीराम दवे

(33)

त्रिलोचन शास्त्री और
उनकी कुछ कविताएँ

(35)

त्रिलोचन की कविता का
स्थापत्यः ओम निश्चल

(39)

गीत चतुर्वेदी की कविताएँ

(40)

शिवकुमार अर्चन
की चार ग़ज़लें

इस बार विशिष्ट कवि : त्रिलोचन शास्त्री

राग त्रिलोचन

श्रीराम दवे

बीसवीं शताब्दी में समकालीन हिन्दी कविता को नया मुहावरा नयी भाषा और नया तेवर देने वाले सर्जकों में **त्रिलोचन** अन्यतम है। भाषा में एक कर्मठ कार्यकर्ता की तरह उन्होंने न केवल कविता की सात्विकता को बचाये रखा प्रत्युत् कविता को गांव, खेत, खलिहान, अमराई, नदी आदि की गंध और उपस्थिति से समृद्ध भी किया है। गाँवों के छोटे और उपेक्षित पात्रों के सुख-दुख और उनकी छोटी-बड़ी चिन्ताएँ जहाँ उनकी कविता का विषय बनी वहीं लोक जीवन के कई-कई चित्र भी उनके सॉनेट, कविताओं, गीतों, कहानियों आदि में देखे जा सकते हैं।

यह वर्ष त्रिलोचन की जन्मशती का वर्ष भी है और इस अवसर पर उन्हें उनके ही सृजन के साथ स्मरण करना अपने ही आत्मीय को स्मरण करने जैसा है। श्री नागानंद मुक्तिकन्ठ ने कहा भी है कि - ''त्रिलोचन शब्दों से, पौ की तरह फटने वाली रोशनी को बखूबी पहचानते हैं और उनको इस बात का एहसास भी बना रहता है कि किस शब्द का प्रयोग कहाँ और किस तरह करना चाहिए।'' यह अलग बात है कि प्रयोग किये हुए शब्द की शक्ति भी सात्विक ही बनीं रहती है अपनी धीर गंभीरता के साथ-

कहाँ है वे लोग/जो सम्भाषिका के जोश में / बोला किए परसाल
और उनके बोल से/जो छाँह छा गई थी/सोचते थे तुम दुलारे,
ताप के दिन नए/हाथ जितने हैं/आड़ करते रहेंगे
कहाँ हैं वे लोग/जो सहयोग झोलों में संभाले/यहाँ आए थे।

निश्चित ही यहाँ 'सम्भाषिका के जोश में', छाँह छा गयी थी और 'सहयोग झोलों में संभाले' ऐसे ही सोचे समझे शब्द हैं जिनके लिए त्रिलोचन हमेशा स्मरणीय है। समावर्तन उन्हें जन्मशती के अवसर पर अत्यन्त विनम्रता के साथ स्मरण करता है तथा उनकी कुछ कविताएँ और सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ.ओम निश्चल का एक महत्त्वपूर्ण आलेख प्रस्तुत कर काव्यराग को त्रिलोचन की भावभूमि से जोड़ने की विनम्र कोशिश कर रहा है।

काव्यराग का दूसरा स्वर आज की हिन्दी कविता के महत्त्वपूर्ण युवा कवि **गीत चतुर्वेदी** की ताजा तरीन कविताएँ हैं जिनमें गहन चिन्तन, नया यथार्थ और चमकीली भाषा एक नए तरह की जुगलबंदी रचती है जैसे-

लकड़ी के पास मेरी दस्तक का स्पन्दन है
पानी के पास मेरे स्पर्श की सिहरन (लकड़ी और पानी)

बहुत सारे नाम मेरे भीतर दफन है/उन्हें अपनी जबान पर नहीं आने देता
मैं नामों का कब्रस्तान हूँ
एक नाम तुम्हारा है/जलपाखी की तरह/तैरता रहता है सतह पर
कभी कभी मेरी देह के जल पर
चौंच मारता है। (नाम)

गीत चतुर्वेदी की ये कविताएँ एक जागरुक और विश्वबोध रखने वाले कवि की कविताएँ हैं। निश्चित ही वे बधाई के हकदार है कि वे इस क्रूर समय में अपनी लेखनी की निर्भीकता और संवेदनशीलता को बचाये हुए हैं - प्रेरक भी बनाये हुए हैं।

काव्यराग के तीसरे स्वर में लोकप्रिय कवि गीतकार और ग़ज़लकार **शिवकुमार अर्चन** की चार समसामयिक ग़ज़लें हैं। चारों ही ग़ज़लों का स्वर छिपे हुए यथार्थ को सामने लाने में सक्षम है मसलन...

बाग तक कब बहारें गईं
मौसमों का हवाला गया।
.....
हैं वही चौसर, वही पाँसे, वही मक्कारियाँ
हर सदी में दाँव पर है द्रोपदी की ज़िन्दगी

आइये, समावर्तन के इस काव्यराग के तीनों भिन्न-भिन्न स्वरों को सुने और रचनाकारों के समकालीन यथार्थ को महसूस करते हुए उनके मूल स्वर से जुड़ने की कोशिश करें।

काव्यराग में रचनाकारों का सदैव स्वागत है। नए वर्ष 2018 के लिए सभी को हार्दिक शुभकामनाएँ।

26, निर्माण नगर,
(रवीन्द्र नगर के पास) , उज्जैन
मोबाइल : 94259-15010
E-mail:shriram.dave@gmail.com

त्रिलोचन शास्त्री

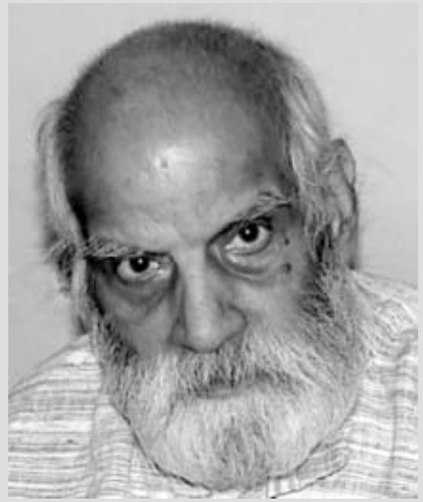

उत्तरप्रदेश के सुल्तानपुर जिले के कघटरा चिरानी पट्टी में जगरदेव सिंह के घर 20 अगस्त 1917 को जन्मे त्रिलोचन शास्त्री का मूल नाम वासुदेव सिंह था। उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से एम.ए. अंग्रेजी की एवं लाहौर से संस्कृत में शास्त्री की उपाधि प्राप्त की थी।

उत्तर प्रदेश के सुल्तानपुर जिले के छोटे से गांव से बनारस विश्वविद्यालय तक अपने सफर में उन्होंने कई पुस्तकें लिखीं और हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया। शास्त्री बाजारवाद के धुर विरोधी थे। हालांकि उन्होंने हिन्दी में प्रायोगधर्मिता का समर्थन किया। उनका कहना था, भाषा में जितने प्रयोग होंगे वह उतनी ही समृद्ध होगी। शास्त्री ने हमेशा ही नवसृजन को बढ़ावा दिया। वह नए लेखकों के लिए उत्प्रेरक थे। सागर के मुक्तिबोध सृजनपीठ पर भी वे कुछ साल रहे। त्रिलोचन शास्त्री हिन्दी के अतिरिक्त अरबी और फारसी भाषाओं के निष्णात ज्ञाता माने जाते थे। पत्रकारिता के क्षेत्र में भी वे खासे सक्रिय रहे हैं। उन्होंने प्रभाकर, हंस, आज, समाज जैसी पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया।

त्रिलोचन शास्त्री 1995 से 2001 तक जन संस्कृति मंच के राष्ट्रीय अध्यक्ष भी रहे। इसके अलावा वाराणसी के ज्ञानमंडल प्रकाशन संस्था में भी काम करते रहे और हिन्दी व उर्दू के कई शब्दकोषों की योजना से भी जुड़े रहे। उन्हें हिन्दी सॉनेट का साधक माना जाता है। उन्होंने इस छंद को भारतीय परिवेश में ढाला और लगभग 550 सॉनेट की रचना की। इसके अतिरिक्त कहानी, गीत, ग़ज़ल और आलोचना से भी उन्होंने हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया।

प्रकाशित कृतियां - कविता संग्रह- धरती, (1945), गुलाब और बुलबुल (1956), दिगंत (1957), ताप के ताए हुए दिन (1980), शब्द (1980), उस जनपद का कवि हूं (1981), अरधान (1984), तुम्हें सौंपता हूँ (1985), मेरा घर, चैती, अनकहनी भी, जीने की कला (2004) आदि

संपादित - मुक्तिबोध की कविताएँ, **कहानी संग्रह-** देशकाल **डायरी -** दैनंदिनी

पुरस्कार व सम्मान - त्रिलोचन शास्त्री को 1989-90 में हिन्दी अकादमी ने शलाका सम्मान से सम्मानित किया था। हिन्दी साहित्य में उत्कृष्ट योगदान के लिए उन्हें 'शास्त्री' और 'साहित्य रत्न'' जैसी उपाधियों से सम्मानित किया जा चुका है। 1982 में ताप के ताए हुए दिन के लिए उन्हें साहित्य अकादमी का पुरस्कार भी मिला था। इसके अलावा उन्हें उत्तर प्रदेश हिन्दी समिति पुरस्कार, हिन्दी संस्थान सम्मान, मैथिलीशरण गुप्त सम्मान, शलाका सम्मान, भवानी प्रसाद मिश्र राष्ट्रीय पुरस्कार, सुलभ साहित्य अकादमी सम्मान, भारतीय भाषा परिषद सम्मान आदि से भी सम्मानित किया गया था।

त्रिलोचन शास्त्री के चार सॉनेट और चार कविताएँ

एक

हाथों के दिन आएँगे, कब तक आएँगे,
यह तो कोई नहीं बताता। करने वाले
जहाँ कहीं भी देखा अब तक डरने वाले
मिलते हैं। वे सुख की रोटी कब खाएँगे,
सुख से कब सोएंगे, कब उसको पाएँगे
जिसको पाने की इच्छा है। हरने वाले
हर हर कर अपना अपना घर भरने वाले
कहाँ नहीं है। हाथ कहाँ से क्या लाएँगे।

शान्ति कहाँ है। अपनी शान्ति के लिये, देखा,
शान्ति दूसरों की हर ली जाया करती है।
विश्व शान्ति की चर्चा भी, इस उस मुखड़े की
सुननी पड़ जाती है, बतंगड़ों का लेखा
कौन करे। जिन शब्दों में आया करती है
भाषा किसको चिन्ता है उसके दुखड़े की।

दो

कब तक जीवन में समाज के होड़ाहोड़ी
चला करेगी, और राष्ट्र भी उसी बाट से
चला करेंगे; रोज नए से नए ठाट से
छीनाझपटी कहीं करेगी तोड़ातोड़ी,
फिर अपने दल-बल के हित में जोड़ाजोड़ी
किया करेगी। मानवता क्या इसी घाट से
पानी लिया करेगी,, इसको किसी काट से
ऐसा करना है कि न चाही मोड़ा-मोड़ी

कहीं दिखाई न दे, पेट की आग न दुख दे
कहीं किसी को। शान्ति सभी की हो, शासन की
शान्ति शान्ति की विडम्बना है और व्यवस्था
कहीं अव्यवस्था भी है। जो सबको सुख दे
वह आचरण और भाषा हो, सन्त्रासन की
रीति मिटे, अपनाव ही बने नई अवस्था।

तीन

गाय जुगाली करती हो चाहे खड़ी खड़ी
या लेटी अधलेटी अपने खूँटे पर हो
या चरने के लिये खुली हो कर बाहर हो
खोज खोज कर घास चर रही हो जरा बड़ी
चकत्तियाँ पा कर थोड़ी सी देर को अड़ी
हो, आगे ही बढ़ते चारों पैर, चँवर हो
पूँछ, डाँस, कुकुरौंछी, माछी इधर उधर हो
तो, कौवा भी आता है उड़ कर इसी घड़ी।

पूँछ चलाती है गैया तो उसे बचा कर,
वह शरीर से चिपके कीड़े चुन लेता है,
खा जाता है और मैल भी आँख-कान के
हर लेता है गैया के कितना सँभाल कर।
यह सम्बन्ध मुझे चुपके से जो देता है
वह सँभाल लेता है मन में, निजी मान के।

चार

रामचन्द्र दूबे पैंसठ से कुछ ऊपर ही
होंगे। गोरा रंग, सफेदी सिर पर मुँह पर
बाल रखा लेने से छाई, माथा भर कर
सल दिखती थी। रूप सुन्दरों में सुन्दर ही
मिला जुआ था। छाती और हाथ के रोएँ

भी सफेद थे, नख भी उनके बढ़े हुए थे,
पण्डिताई करते थे, थोड़ा पढ़े हुए थे।
ब्याज कमाते थे ऋण देकर। धन क्यों खोएँ।

किसी बड़े को बड़ा ऋण दिया, ब्याज न आया,
फेरे करते रहे, पाँव उनके खिया गए।
प्राप्ति नहीं दीखी तो ब्राह्मण-भाव आ गए,
न्याय देवता करें इसलिए बाल रखाया।

पाँच साल पर ऋणी गया, कर दी भरपाई,
दूबे ने भी देव-दया से जटा कटाई।

भाषाएं टकराती हैं

भाषाएं टकराती हैं
चट्टानों से भी
जीवन लेकर या देकर

दो ही पद
तुलते हैं जिह्वा पर
जो जानी अनजानी धारा में
कुछ अपने लगते हैं
डगमग नैया खेकर
किन-किन चेहरों की
क्या-क्या मुद्रा
कब-कब क्या दे गई झलक देकर
जब तक हम कुछ आपा पाते हैं
कहीं किसी को लेकर।

नदी : कामधेनु

नदी ने कहा था : मुझे बाँधो
मनुष्य ने सुना और
तैर कर धारा को पार किया

नदी ने कहा था : मुझे बाँधो
मनुष्य ने सुना और
सपरिवार धारा को
नाव से पार किया

नदी ने कहा था : मुझे बाँधो
मनुष्य ने सुना और
आखिर उसे बाँध लिया

बाँध कर नदी को
मनुष्य दुह रहा है

अब वह कामधेनु है।

कहाँ हैं वे लोग

कहाँ है वे लोग
जो सम्भाषिका में जोश से
बोला किए परसाल

और उनके बोल से जो छाँह
छा गई थी
सोचते थे तुम दुलारे,
ताप के दिन नए
हाथ जितने हैं
आड़ करते रहेंगे

कहाँ हैं वे लोग
जो सहयोग झोलों में संभाले
यहाँ आए थे।

ताप के ताए हुए दिन

ताप के ताए हुए दिन ये
क्षण के लघु-मान से
मौन नया किए

चौंध के अक्षर
पल्लव पल्लव के उर में
चुपचाप छपा किए
कोमलता के सुकोमल प्राण
यहाँ उत्ताप में
नित्य तपा किए

क्या मिला क्या मिला
जो भटके अटके
फिर मंगलमन्त्र जपा किए

त्रिलोचन की कविता का स्थापत्य

ओम निश्चल

आधुनिक हिन्दी कवियों में त्रिलोचन इसलिए महत्त्वपूर्ण नहीं है कि उन्होंने नगई महरा जैसी ग्रामीण संस्कृति की कविता लिखी है या वे ''ताप के ताए हुए'' दिन के लिए पुरस्कृत हुए या उन्होंने विजातीय छंद सानेट को भारतीयता के रंग में ढाला बल्कि इसलिए कि वे छंदों पर भरोसा टिकाने वाले और छंदों की ओर लौटते हुए कवि हैं। तुलसी की बोली बानी और उनकी परंपरा के कवि हैं। वे जितना प्राचीन परंपराओं में रमते हैं उतना ही आधुनिक भावबोध में। तुलसी जिस दीन हीन भाषा भाषी समाज के कवि थे, उसी परंपरा के कवि त्रिलोचन भी हैं जिनका यह कहना है:

उस जनपद का कवि हूँ जो भूखा दूखा है,
नंगा है, अनजान है, कला-नहीं जानता
कैसी होती है क्या है, वह नहीं मानता
कविता कुछ भी दे सकती है।

सच कहें तो यह समाज आज भी वैसा ही है। विपन्नता में जीता हुआ जिसे कुछ लोग गरबीली गरीबी कहा करते हैं। पर त्रिलोचन इस समाज के होकर भी अपनी बोली बानी में बदल नहीं जाते। वे तुलसी बाबा भाषा मैंने तुमसे सीखी केवल कहते नहीं है बल्कि अपने छंदों के कवि हैं। उन्होंने गीत, गजल, सॉनेट, दोहा, कुंडलियां, बरवै, मुक्त छंद जैसे कविता के अनेक छंदों में लिखा, लेकिन सॉनेट के कारण वे हिन्दी कविता जगत में जाने गए। प्रसाद, पंत और निराला ने भी यद्यपि, सानेट लिखे हैं पर त्रिलोचन में सॉनेट का वैविध्य है, विस्तार है, उसके बहुविध प्रयोग हैं। उनमें जीवन के प्रसंग हैं। लगता है कि कोई जीवन के बीचोबीच धंसा व्यक्ति लिख रहा है। त्रिलोचन के सानेट में आभिजात्य नहीं है। देहाती कस्बाई परिवेश में पले भारतीय संस्कारों के गंवई मन की आभा है। विपन्नता है पर आत्महीनता नहीं। होठों पर मांगी हुई हँसी तो नहीं वाला आत्मविश्वास है। इसलिए यह कहना अतिशय न होगा कि हिन्दी कविता में सॉनेट का शुभारम्भ भले किसी और ने किया हो, पर उन्होंने सानेट को प्रतिष्ठा दिलाई। अपने विपुल काव्य के केंद्र में रखा। सॉनेट जैसे विजातीय छंद को तदनुकूल मीटर और लयबद्धता के साथ भारतीयता में पिरो कर प्रस्तुत किया। ऐसा इसलिए संभव हुआ कि हिन्दी संस्कृत और उर्दू के छंदों में उनका हाथ रवां था। कहते हैं, सॉनेट के जितने भी रूप-भेद साहित्य में किए गए हैं, उन सभी को त्रिलोचन ने आजमाया है। सानेट से उन्हें पहचान मिलनी शुरू हुई तो इस पथ पर कुछ परवर्ती कवियों ने चलने की कोशिश की पर वे उतने सरपट न दौड़ सके जैसे त्रिलोचन। कविवर विजेन्द्र ने अपने संग्रह **उदित क्षितिज में** सानेट पर हाथ आजमाया पर उन्हें वह सिद्धि नहीं मिली जैसी त्रिलोचन को। इसके पीछे वजह यह थी कि त्रिलोचन हिंदी के पारंपरिक छंदो में चौपाई, रुबाई, बरवै, रोहा, दोहा, सवैया व कुंडलियां छंदों में भी निष्णात थे। इसलिए उनकी कविताएं चाहे छंद में हों या मुक्त छंद में, या खड़ी बोली में, वे उनके भाव-रस में पगी हैं।

आज के परिदृश्य में जिस हिंदी गजल की धूम है उसकी नींव रखने में भारतेन्दु हरिश्चंद, निराला, त्रिलोचन, गुलाब खंडेलवाल जैसे कवियों का ही हाथ है। भारतेन्दु हरिश्चंद ने भी रसा उपनाम से गजलें लिखी हैं। गुलाब खंडेलवाल की गजलों की पुस्तक **सौ गुलाब खिले** की भूमिका त्रिलोचन ने लिखी थी। वे बिल्कुल हिन्दी की परम्परा की गजलें हैं- बहुत सादगी में अपनी बात कहती हुई। त्रिलोचन को उर्दू का भी खासा ज्ञान था पर अपनी गजलों पर उन्होंने उर्दू की मोहर नहीं लगने दी। जबकि उसी दौर के शमशेर उर्दू की शैली में गजलें कह रहे थे। त्रिलोचन ने गजलों की विपुल व महान विरासत को देखते हुए गजल को हिन्दी के संस्कारों में ढाला वैसे ही जैसे अंग्रेजी सानेट को भारतीय काव्यभूमि पर उतार कर उसे हिन्दी का जामा पहनाया। बिल्कुल उसी तरह जैसे आज के सुपरिचित संस्कृत कवि राजेन्द्र मिश्र और अन्य कुछ कवि गजल, सानेट, गीत रुबाई आदि विधा को संस्कृत में नया संस्कार दे रहे हैं और संस्कृत को लोक के अनुकूल बना रहे हैं। निराला की गजलें भी हिन्दी परंपरा की गजलें थीं। *किनारा वो हमसे किये जा रहे हैं*- जैसी गजलें इसका प्रमाण हैं। त्रिलोचन भी उसी राह पर जाते दीखते हैं। उनके गीतों, गजलों, सानेटों में सुभाषितों का आगम है। जनता को दुखों से उबारने का उपाय है।

गज़लें ही क्यों, उन्होंने रुबाइयों को भी साधा पर उसे चतुष्पदी बना कर। त्रिलोचन रुबाई को चतुष्पदी कहते थे। गुलाब व बुलबुल में ऐसी चतुष्पदियां यानी रुबाइयां खूब हैं। बिल्कुल हिंदी संस्कारों में ढली। इसीलिए गजलों व चतुष्पदियों की किताब देते हुए आश्वस्त थे कि इससे वे काव्यरसिकों में ज्यादा सम्प्रेषित होंगे। कुछ चतुष्पदियां देखें उनकी जिनमें एक खास तरह का कौल करार है। छंदों से सनातन रिश्ता जोड़ने की प्रतिश्रुति है:

तुम को मेरे समीप आना है
और आकर वे गीत गाना है
जिससे जीवन के घर में मैं भूलूँ
मुझको अब और कहीं जाना है

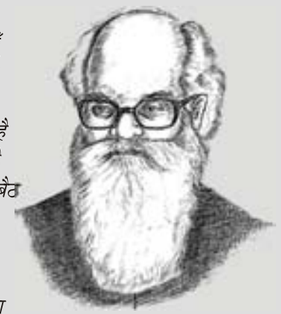

जिसको मंजिल का पता रहता है
पथ के संकट को वही सहता है
एक दिन सिद्धि के शिखर पर बैठ
अपना इतिहास वही कहता है

जब लहर आई तो मैंने गाया
जी का व्यवसाय बस यही पाया
शब्द और अर्थ थे जगत के ही
भाव अपने उन्हीं में भर लाया

- गुलाब और बुलबुल

कवि तो मानव आत्मा का शिल्पी होता है।
खेत खाद से उर्वर होता है, जीवन भी आघातों से
विकसित होता है बढ़ता है उत्पातों से

- अनकहनी भी कुछ कहनी है।

नहीं चाहता कभी तरस खाओ इन जन पर
अब तक दुख ही दुख जिसने देखा है जग में
आभारी हूँ मैं पथ के सब आघातों का
मिट्टी जिनसे वज्र हुई उन उत्पातों का
इन आंखों की ज्योति
और इन केशों की छांह
पथ पर हो---और
कुछ और नहीं चाहिए 'अरधान'
ले जा यह दुख की माला है, ये आंसू के दाने
तू पहचानेगा, कोई भी मत पहचाने

आंखों के प्रकाश में बंध कर जा अब तू जा
घोर पराजय में भी गान विजय के तू गा।

- उस जनपद का कवि हूँ

सानेट में नीति या सुभाषित सरीखे वाक्य प्रायः अंत में या कभी कभी बीच में आते हैं। जीवन में जो देखा पाया अनुभव किया उससे उपजी सीख से उनके सानेटों का प्रायः समापन होता है। उदाहरणस्वरूप कुछ पद-

क्रांति उन्हीं लोगों के पास पला करती है
दुख के तम में जीवन-ज्योति जला करती है।

(कस्मै देवाय)

मिट्टी का अपमान। कहां कब छूटा पीछा
प्यार करो तो प्यार करो क्या आगा पीछा।

(बिल्ली के बच्चे)

गाओ, मन के तारों पर, जी भर कर गाओ
जहां मरण का सन्नाटा है जीवन लाओ

(गाओ)

बिना बुलाए जो आता है प्यार वही है
प्राणों की धारा उसमें चुपचाप बही है

(प्यार)

दौड़ दौड़ कर असमय समय न आगे आए
वह कविता क्या जो कोने में बैठ लजाए।

(उस जनपद का कवि हूँ)

मिट्टी के इन चित्रों को किसने देखा है
किसने इनके मर्मो को समझा बुझा है
किसने इन सांसों की व्याकुलता जानी है।

- शब्द

कभी गालिब ने मीर के बारे में कहा थाः रेखो के हमीं उस्ताद नहीं है गालिब। कहते हैं कि अगले जमाने में कोई मीर भी था। ऐसे ही अपनी कविताओं में अनेक बार त्रिलोचन की याद करने वाले केदार जी ने कहा ही है : *आगे आगे त्रिलोचन पीछे पीछे मैं।* निश्चित ही त्रिलोचन अग्रगामी कवि हैं। उनके कवि-व्यक्तित्व में यह सिफत है कि वह गीत भी बना सकता है, पद भी, सानेट भी और कविता भी। अपने पूरे काव्य व्यक्तित्व को त्रिलोचन ने कुछ इस तरह मॉजा है कि आप उनकी कविताओं के माध्यम से ग्रामीण भारत का चेहरा भी देख सकते हैं। एक ऐसा समाज देख सकते हैं जहां गरीबी है, विपन्नता है फिर भी जीवन की हिलकोर सबसे ज्यादा वहीं दिखेगी। त्रिलोचन ने ग्रामीण भारत के इस स्वरूप को अपनी कविताओं में उत्फुल्लता से उजागर किया है। कवि के रूप में उन्होंने कविता की कई शैलियों को अपनी प्रतिभा से सींचा और हिन्दी कविता की एक ऐसी देशज रीति विकसित की कि जिसमें कवि का लोकेल भी चिह्नित किया जा सके और कविता का भी लोकेल भी।

'जीने की कला' में तो वे प्रकृति के इतने करीब चले जाते हैं कि जड़ी बूटियों तक के औषधीय महत्व की अनेक कविताएं लिख डालते हैं। क्या संयोग है कि वे अना कवितारंभ धरती जैसे संग्रह से करते हैं और उसका समाहार जीने की कला से। जीने की कला तो प्रकृति सिखाती है। आज आर्ट आफ लिविंग के महंगे ध्यानकेंद्र खुल गए हैं। श्री श्री जैसे लोग जीवन की कला सिखाने में लगे हैं। पर सच कहें तो जीने की कला तो कवियों कलाकारों से सीखी जानी चाहिए। एक किसान से सीखी जानी चाहिए। जैसे एक किसान नगण्य से नगण्य चीजों से अपने अनुभव का भंडार भरता रहता है, जैसे बढ़ई के लिए एक एक खपच्ची की कीमत है, वैसे ही अभावमय संसार को भी कैसे भावमय बनाया जाए कैसे विपन्नता भरे इस जीवन को संपन्नता के बोध से जिया जाए यह कोई कवि ही सिखा सकता है। अचरज नहीं कि उर्दू के शायर बशीर बद्र ने एक गजल में कहा हैः **यों तो हम कुछ देने के काबिल ही कहां हैं लेकिन। हां कोई चाहे तो जीने की अदा ले जाए।** जीने की कला को पढ़िए तो लगता है जीवन में इतना सब कुछ है पर हम महानगर के लोग गमले में गेंदा उगाकर खुश हैं, बोनसाई प्रजाति के पौधों के साथ खुश हैं। जीने की असली कला तो उस किसान के पास है जिसकी खेतीबारी कुदरत के आसरे है पर जीवन की उमंग उसके भीतर किसी श्री श्री से कम नहीं। उसका सब कुछ बाढ़और सूखे की भेंट चढ़जाता है पर फिर भी वह भीगे नयनों से प्रलय प्रवाह देखता हुआ कुछ दिनों में फिर अपनी धुरी पर लौट आता है इस आश्वस्ति के साथ कि *होइहैं वही जो राम रचि राखा।* त्रिलोचन को इसीलिए कहता हूँ मैं कि वे तुलसी की कार्यशाला की उपज हैं। पग पग पर सीख, नीति, संघर्ष और सुभाषितों से भरे। बिस्तरा है न चारपाई है के बीच भी जीने की कला सिखाते हुए।

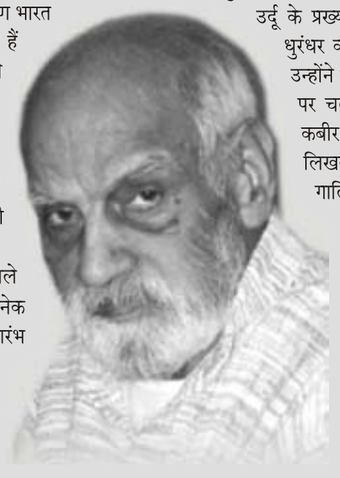

प्रायः लोग कवियों की परंपरा पूछते हैं। जानना चाहते हैं कि वह किस स्कूल का कवि है। किस विचारधारा का कवि है। त्रिलोचन अपनी ढब के कवि हैं। यह वर्ष मुक्तिबोध जैसे कद्दावर कवि का जन्मशती वर्ष भी है। पर दोनों कवि अपने-अपने स्थापत्य में अलग हैं। दोनों वैचारिक तल पर कमोवेश एक हैं। पर दोनों के अनुभवबोध का संसार अलग है। मुक्तिबोध विश्व वैचारिकी से जूझते हैं और जड़ी भूत सौंदर्याभिरुचियों की सीमाओं से टकराते हैं तो त्रिलोचन एक कवि को भारतीय कवि के रूप में धरती से, चैती से, अमोला से, प्राकृतिक वनस्पतियों से, भाषा से, छंद से, गीति से, प्रतीक से गांव से, देहात से- उस देहात से, जिसके बारे में रागदरबारी में श्रीलाल शुक्ल लिखते हैं, यहां से भारतीय देहात का महासागर शुरू होता है, जुड़ना सिखाते हैं उस जनपदीयता का बोध कराते हैं जिसे वृहत्तर अर्थों में रामविलास शर्मा जी हिन्दी जाति कहा करते हैं।

तुलसी का काव्य भारतीय कविता का एक बड़ा आगार है। जिसने तुलसी को पढ़लिया, समझ लिया, उससे लोहा लेना मुश्किल है। उर्दू के प्रख्यात कवि फिराक गोरखपुरी भले ही हिन्दी के धुरंधर कवियों से चिढ़ते रहे हों, पर तुलसी का महत्व उन्होंने भी स्वीकार किया है। त्रिलोचन तुलसी की सरणि पर चलने वाले कवियों में हैं। और तुलसी ही क्यों कबीर भी उनके उच्चादर्श थे। 'वह काशी का जुलाहा' लिखकर कबीर को तथा 'गालिब' कविता लिखकर गालिब को उन्होंने मान दिया है। गालिब की बोली ही आज हमारी बोली है- कहकर उन्होंने गालिब से अपनत्व कायम किया है। और नागार्जुन। वे तो जैसे उनकी धड़कनों में बसे हैं। नागार्जुन त्रिलोचन व केदारनाथ अग्रवाल के केदार में बेशक दुनियादारी भरपूर थी पर नागार्जुन और त्रिलोचन तो जैसे एक ही धातु के बने थे। दोनों जीवन से बेपरवाह, पर कविता के प्रति संजीदा, धनिकों को ठेंगे पर रखने वाले गांव गिरांव से घना

नाता रखने वाले दोनों की वैचारिक जमीन एक सी। दोनों लेखक संगठनों के निशाने पर रहे पर आखिरकार इन लेखक संगठनों का काम भी न नागार्जुन के बिना चल सका न त्रिलोचन के बिना। नागार्जुन से प्रेम इतना कि उन पर पांच पांच कविताएं लिख डालीं। उनके बारे में वे लिखते हैं

नाजार्गुन क्या है। अभाव है
जम कर लड़ना विषम परिस्थितियों से उसने सीख लिया है,
लिया जगत से कुछ तो उससे अधिक दिया है।

यह उस बात का उत्तर भी है जो मुक्तिबोध अपनी कविता में पूछ रहे हैं। **अब तक क्या किया। जीवन क्या जिया ?** त्रिलोचन उन जन कवि का गौरवगान करते हैं जो अत्याचारियों पर कोड़े बरसाता है। कवि होना क्या होता है यह उन्होंने तुलसी कबीर और नागार्जुन से सीखा है और जगह जगह इस बात को वे दर्ज भी करते हैं। **तुम्हें सौंपता हूँ** में वे कहते हैं :

कवि हो तो अपने ही भीतर रहो न ऊबे
डूब गए जो, सबसे वे, सब उनसे ऊबे।

उनका ओरियंटेशन तुलसी जैसे समृद्ध कवि की कविता-कार्यशाला में हुआ है। पूरा अवध तो तुलसीमय ही है। सो त्रिलोचन में यह शुरू से बोध रहा कि वे जो लिख रहे हैं, रच रहे हैं, उसकी चित्रोपमता अनन्य है। तभी तो वे कहते हैंः *लड़ता हुआ समाज, नई आशा अभिलाषा/नए चित्र के साथ नई देता हूँ भाषा।* (दिगंत) यह कैसी भाषा है, इसकी ताकत क्या है, वे पहचानते थे। 'दिगंत' में ही उन्होंने कहा हैः *भाषा की लहरों में जीवन हलचल है/ध्वनि में क्रिया भरी है और क्रिया में बल है।* यह है भाषा की गतिशीलता। बिल्कुल सेनेमोटोग्राफी की तरह। धड़कते हुए जन जीवन के क्रिया व्यवहार को उतनी ही गतिशील क्रिया से चित्रित करने वाले। इस तरह त्रिलोचन की भाषा में गतियां हैं, स्पंदन है, बोलचाल की धमक है, जीवन की हलचल है। वे जीवन की हलचल के ही कवि हैं।

त्रिलोचन में रस है, रस का परिपाक है। वह रस अंत तक नहीं मरा। वह स्नेह निर्झर अंत तक बहता रहा उनकी कविताओं में। जबकि त्रिलोचन का जीवन संघर्ष चुनौतियों भरा रहा है। अपने बारे में, अपनी काव्यप्रकृति के बारे में उनके ही सानेट के कुछ अंश देखिए। वे क्या कहते थे :

कौन कह सकेगा इसका यह जीवन चन्दे
पर अवलंबित है। चलना तो देखो इसका
उठा हुआ सिर, चौड़ी छाती, लंबी बाँहें
सधे कदम, तेजी, वे टेढ़ी मेढ़ी राहें
कभी नहीं देखा है इसको चलते धीमे
धुन का पक्का है, जो चेते वही चिताए।
जीवन इसका जो कुछ है पथ पर बिखरा है
तप तप कर ही भट्ठी में सोना निखरा है।

(उस जनपद का कवि हूँ)

त्रिलोचन की कविता में भाषा की अपनी एक जगह है। वह अपनी भाषा में कौंधती है। कोई भी अभ्यस्त पाठक सुधी साहित्यिक उनकी कविता की भाषा देखकर कह सकता है कि हां यह त्रिलोचन की भाषा है। उनकी कविता है। वह बातचीत की शैली से अनुप्राणित है। वे अपनी कविता के शैलीकार थे। वैसी कविता उनके समकालीनों में किसी के पास नहीं है। वैसी अनुभव की पूँजी किसी के पास नहीं है। आज का कवि अपने लोक से अनजान है। वह खेती किसानी के मर्म से नावाकिफ है। पर चाहता है कि उसे भारतीय कवि कहा जाए। उसे लोक कवि की पदमी से नवाजा जाए। वे ठाठ से कहते थे बल्कि चुनौती फेंकते थे अपने समकालीनों पर कि 'कविता में अपने साथ देखो

मैं कहा हूँ।.... मैं बहुत अलग कहीं और हूँ। खोज लो मैं कहां हूँ।' साथ ही यह कहकर समस्या हल भी कर देते थे कि :

मैं सबके साथ हूँ अलग अलग सबका हूँ
मैं सबका अपना हूँ सब मेरे अपने हैं
मुझे शब्द-शब्द में देखो
मैं कहाँ हूँ।

(ताप के ताए हुए दिन)

मुझे शब्द-शब्द में देखो। कवि यह कहता है। उधर अज्ञेय कहा करते थे...शब्दों में मेरी समाई नहीं है, मैं सन्नाटे का छंद हूँ। अज्ञेय और त्रिलोचन में यही बारीक भेद है। अज्ञेय उस सन्नाटे को पकड़ने की कोशिश करते रहे जो मौन से उपजता है और त्रिलोचन उस यथार्थ को पकड़ने का यत्न करते रहे जो शब्दों से उसकी धड़कनों से उपजता है। आत्मपरक कविताओं में त्रिलोचन ने अपनी गरबीली गरीबी का नक्शा पेश किया है। *'भीख मांगते उसी त्रिलोचन को देखा कल'* जैसी कविता तभी वे इतनी निस्संगता से लिख सके और 'आरर डाल' नामक कविता में अपनी नौकरी की अस्थिरता का इन शब्दों में बखान कियाः *'आरर डाल नौकरी है। यह बिलकुल खोटी है। इसका कुछ ठीक नहीं है आना-जाना।'* (ताप के ताए हुए दिन) आरर डाल यानी ऐसी कमजोर डाल की जरा सी टेक ली कि अब टूटी-तब टूटी।

वे जीवन के ताप से होकर निकले थे तभी ताप के ताए हुए दिन लिख सके। हिन्दी की कविता जिसकी परंपरा में निराला और मुक्तिबोध जैसे कवि आते हैं, उसे त्रिलोचन ने भी अपने ताप अपने संघर्ष से सींचा है। उद्वेलित किया है। हिन्दी कविता की वास्तविक जमीन क्या है इसे त्रिलोचन से ज्यादा तजुर्बे से भला कौन कवि बता सकता हैः

हिन्दी की कविता उनकी कविता है जिनकी
सांसों को आराम नहीं था, और जिन्होंने
सारा जीवन लगा दिया कल्मष को धोने
में समाज के, नहीं काम करने में घिन की

(दिगंत)

उन्होंने नई भाषा में कविता का नया सपना देखा है। नए समाज का सपना देखा है। 'मेरी कविताओं के सब सपने मेरे हैं---------' वे कहते थे। कविताएं रहेंगी तो सपने भी रहेंगे। वे पृथिवी पर रहते हुए खेती किसानी से वाकिफ होते हुए भी यह कहने में हिचकते नहीं थे कि वे इसे कितना कम जान सके। कोई दंभ नहीं कोई बड़बोलापन नहीं। सहज स्वीकार। वे शब्दों के सारथी थे। कविता की टोह में भटकते रमते हुए ही अंतिम सांस ली। नागार्जुन ने आखिरी दिनों में 'अपने खेत में' जैसी मार्मिक कविता लिखी थी। त्रिलोचन की कुछ आखिरी मार्मिक कविताओं में एक वह है जिसमें वे कहते हैं कि *'मुझे अपने मरने का थोड़ा भी दुख नहीं, मेरे मर जाने पर शब्दों से मेरा संबंध छूट जाएगा, इस बात का अफसोस है।'* 'शब्द' पर उनकी अनेक कविताएं हैं। एक

पूरा संग्रह ही है 'शब्द शीर्षक से। पर शब्दों से नाता टूटने का यह अफसोस हिन्दी में नहीं, विदेशी कवियों में भी शायद किसी ने व्यक्त किया हो। यही हमारी वर्णानां अर्थसंघानां रसानांछंदसाम- की भारतीय कवि-परंपरा है।

त्रिलोचन ने अपने काव्य में अपनी गरीबी का बखान करने में संकोच नहीं किया है। इसलिए कि अभावमय जीवन भी उनके लिए भावमय था। ऐसी अभावमयता में जीवन यापन करने वाले, अभाव से हार न मानने वाले स्वभावमय लोगों से ही उनकी कविता जुड़ती है, उन्हीं से शक्ति ग्रहण करती है। पर पराई पीड़ा का आख्यान लिखने वाले त्रिलोचन ने अपनी पीड़ा का संकेत भी करने में कसर नहीं छोड़ी है। खीझ में वे लिखते हैं।

डियर, चलो सिनेमा हो जाएं। तबियत भारी भारी-सी है।
ठुनका-ठुनकी बिना कभी मेरी सुनते हो?
किसको चूल्हा दिखा रहे हो। धुंआ बराबर पीते पीते
तंग आ गयी हूँ मैं दुखता है मेरा कूल्हा।
बैठ नहीं पाती। ये दिन हैं कितने तीते।
यह भी क्या जिन्दगी, वही दिन, वही सबेरा
वही रात तेली के बैल सरीखा फेरा।

पर इस संघर्ष से भी वे हताश नहीं होते थे। वे जानते थे कि इन संघर्षों पर विजय पाकर ही मनुष्य बना जा सकता है। कहा है उन्होंने -

कठिन परीक्षाएं ले लेकर मित्र चिरंतन
मुझे मनुष्य बना दो, विजित न हो मेरा मन।

(अनकहनी भी कुछ कहनी है)

उन्हें मनुष्यता के गिरते मान मूल्यों की चिंता थी। उस पूंजीवाद की चिंता थी जो दूसरे विश्वयुद्ध के बाद से ही पूरी दुनिया में पांव पसार रहा था जिसे लेकर मुक्तिबोध केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, व रामविलास शर्मा जैसे उनके सभी समकालीनों ने अपनी रचनाओं में आवाज उठाई है। धरती में ही उन्होंने इसकी आहट भांप ली थी। उन्होंने लिखा है: ''इन दिनों मनुष्य का कोई महत्व नहीं है। मूल्य गिर गया है अब मनुष्य का। सिंधु में बिन्दु का जो स्थान है वह भी स्थान नहीं है मनुष्य का।'' इसी कविता के आखिर में वे यह भी कहते हैं: *''पूंजीवाद ने महत्व नष्ट कर दिया सब का/जीवन का, जन का, समाज का, कला का, बिना पूंजीवाद को मिटाए किसी तरह भी यह जीवन स्वस्थ नहीं हो सकता। ज्ञान-विज्ञान से किसी प्रकार कोई कल्याण नहीं हो सकता।''*(धरती)

अचरज है कि यह केवल मनुष्यता के गिरने का सवाल नहीं है। यह साहित्य में भी व्याप रहे कालुष्य का सवाल जिसे सरल हृदय लेकिन निर्भयता से त्रिलोचन ने अपनी बात कही ''प्रतिभा नहीं चाहिए, मेरे गुट में आओ, इधर उधर मत भटको।... *हमने बढ़कर उन लोगों की रोटी छीनी जो चुपचाप खा रहे थे, जनता के हामी बनते थे।''* शराब और कविता पर क्या कटाक्ष किया है उन्होंने एक सानेट में। कहते हैं पुष्कर तो शराब पीकर कविता करता है तो जैसे उसके सर पर सरस्वती उतर आती हैं। पर ऐसे पीने वालों में त्रिलोचन का नाम मत घसीटो। वह तो पीता है लोटे पर लोटे पानी। कहां शराब मयस्सर उसको। अंततः उनके कहे पर लक्ष्य करें -

कवि कविता शराब तीनों का पक्का नाता-
तीनों साथ न हों तो काव्य नहीं बन पाता।

(तुम्हें सौंपता हूँ)

अपना वैशिष्ट्य या कि अपने बारे में प्रवाद खुद त्रिलोचन ने अपने सानेटों में आंके हैं। एक सानेट में उन्होंने कहा,

कवि है नहीं त्रिलोचन अपना सुख दुख गाता
रोता है वह, केवल अपना सुख दुख गाना
और इसी से इस दुनिया में कवि कहलाना।

(उस जनपद का कवि हूँ)

आलोचकों के रवैये से परेशान त्रिलोचन भी रहे। लिहाजा उन्हें कहना पड़ा -

आलोचक है नया पुरोहित उसे खिलाओ
सकल कवि यशः प्रार्थी, देकर मिलो मिलाओ।

(ताप के ताए हुए दिन)

कवि की एक परख इससे भी होती है कि उसने समाज को, समाज के निचले तबके को किस गहराई से पहचाना और आकलित किया है। आम चरित्रों के साथ उसका कैसा रिश्ता है। हिन्दी कविता में कवियों के तमाम चरित्रों पर कविताएं लिखी हैं। रामदास, मोचीराम और बलदेव खटिक से लेकर पृथ्वी का रफूगर तक। नागार्जुन के यहां भी अनेक चरित्र आते हैं। ज्ञानेन्द्रपति तो जैसे चरित्रों के कवि हैं। पचासों कविताएं ऐसे चरित्रों पर होंगी उनके यहां। लीलाधर मंडलोई के यहां भी चोखे कक्का, कत्वारू आदि दशाधिक चरित्रो पर कविताएं होंगी। त्रिलोचन की लंबी कविता नगई महरा काफी चर्चा में आई। फिर चंपा काले अच्छर नहीं चीन्हती। उनके अन्य चरित्र भी कम रोचक नहीं है। भोरई केवट, फेरू, अवतारिया, टेल्हू, इंदो, सुकनी, डुब्बी, सब्जी वाली बुढ़िया आदि। क्योंकि त्रिलोचन मूलतः किसानी चेतना के कवि हैं इसलिए ऐसे चरित्रों से ही मिलकर ग्रामीण भारत की एक तस्वीर बनती है। वे अपनी कविताओं में ऐसे ही भूखे दूखे ग्रामीण भारत का चित्र खींचते हैं। ऐसी चित्रोपम भाषा जिसमें वह विषय वस्तु जैसे चित्रवत ध्वनिवत हमारे समक्ष साकार हो उठती है। एक अर्थ में त्रिलोचन जैसे आंचलिक कवि जैसे मालूम होते हैं। उनकी भाषा में देशज शब्दों की आमद बहुत है। अवध और अवधी के मूल चरित्रों को जाने बिना उनकी कविता में सबकी समाई नहीं हो सकती- वहीं अवधी जिसे तुलसी ने अपने कंठ में पिरोकर अमर कर दिया। पग पग पर सीख पग पग पग पर सुभाषित और नीतिवाक्य। तुलसी जैसे कवि के भाषाई संस्कारों से पल्लवित त्रिलोचन के यहां भी ऐसे सार्वभौम सुभाषितों व नीति वाक्यों की कमी नहीं है। पर ऐसी सुभाषितमयता अन्य कुछ कवियों में भले मिल जाए, कविता का ऐसा सघन स्थापत्य उनके अन्य समकालीनों में दुर्लभ है।

जी-1/506 ए, उत्तम नगर, नई दिल्ली-110059
मेल : omnishchal@gmail.com
फोन - 8447289976

गीत चतुर्वेदी की कविताएँ

पेपरवेट

कितनी तेज हवा चल रही थी
उस समय
अगर तुम्हारा एक आंसू
इस कागज़ पर न पड़ा होता
तो यह कब का उड़ चुका होता

नाम

अगर हर रोज़ मैं एक अक्षर लिखूं
तो मुझे चौदह दिन लगेंगे
अपना नाम लिखने में,
मैं सच में इतना ही धीमा लिखता हूँ

मेरे नाम में संगीत है और छंद है
और दोनों ही
बिना रियाज के नहीं सधते

बचपन से लिख रहा हूं
फिर भी कभी-कभार अपने नाम की वर्तनी में
गलती कर देता हूं
मुझे ठीक से याद है वर्तनी
लेकिन टाइप करते समय मेरी उंगलियां
मेरे समय से ज्यादा जल्दबाज हो जाती हैं

बहुत सारे नाम मेरे भीतर दफ़न हैं
उन्हें अपनी जबान पर नहीं आने देता
मैं नामों का कब्रस्तान हूं.

एक नाम तुम्हारा है
जलपाखी की तरह
तैरता रहता है सतह पर
कभी-कभी मेरी देह के
जल पर चोंच मारता है

दुनिया के सबसे शांत तालाब में भी
पड़ सकती है भंवर
उसके करीब जाकर
कोई एक नाम पुकार के तो देखो

अपनी कलाई की त्वचा को
होठों से लगाकर
मैंने कई बार पुकारा है
तुम्हारा नाम, मेरा नाम
दोनों एक जैसे गूंजते हैं

भाषा में एक नया समास बनाएं
जब हमारे नाम साथ पुकारे जाएं
बशर्ते तुम्हारे और मेरे नाम के बीच
'या' न हो,
हमेशा 'और' हो

लकड़ी और पानी

मैंने एक दरवाजे पर दस्तक दी
भीतर वाले ने नहीं सुना
पर दरवाजे ने सुन लिया
मैं जब भी वहां दस्तक देता हूं
दरवाजा मेरा संगीत पहचान लेता है

जब पहली बार मैंने एक नदी में पैर रखे
पाया कि पानी मेरी देह से नहा रहा है
मेरे भीतर के पानी और बाहर के पानी में
बहाव का बंधुत्व है

लकड़ी के पास मेरी दस्तक का स्पंदन है
पानी के पास मेरे स्पर्श की सिहरन

आलसी कवियों की स्तुति में

दिन में महज दो-चार मिनटों के लिए ही
याद आता है कि हम पिता भी हैं
दिन में महज दो-चार मिनटों के लिए ही
हम कवि होते हैं

अगली कविता लिखने तक
हर कोई होता है भूतपूर्व कवि

आलसी कवि,
दूसरे कवियों से कहीं बेहतर होते हैं
उनकी कविताओं में संपूर्णता के विरूद्ध
कंपकंपाती एक हिचक होती है
इस तरह वे अपना कवि होना
देर तक बनाए रखते हैं

इसलिए भी बेहतर होते हैं आलसी कवि
कि मारे आलस के
कुछ पंक्तियों के बाद ही
वे अपनी कविता से ऊब जाते हैं,
'ये कभी पूरी न हो सकेंगी'
इस नाउम्मीदी के साथ उन्हें मुक्त कर देते हैं
इस तरह कुछ अच्छी कविताएं
हमें पढ़ने को मिल जाती हैं साल-छमासे

आखिरी सांस

जाते-जाते पलटकर देखा उसने
और रुकते-रुकते भी चमक कर पूछ लिया:
'क्यों मियां आशिक!
इतने बरस जी लिए, जिंदगी का क्या किया?
सबकी नज़रें बचाकर उससे नजरें मिलाईं
और बिना रुके दमक बोल दिया:
'आधी रोटी कमाई, मिल-बांटकर खाई
और खुश हूं
कि गालिब का एक शेर आधा तो समझ लिया'

गीत चतुर्वेदी

जन्म : 27 नवम्बर 1977 मुम्बई में जन्में गीत चतुर्वेदी के खाते में छह लिखी हुई और कई अधूरी-अनलिखी किताबें दर्ज हैं, पहला कविता संग्रह 'आलाप में गिरह' 2010 में राजकमल प्रकाशन से आया और दूसरा संग्रह 'न्यूनतम मैं' भी जल्द ही वहीं से आने वाला है। गीत को कविता के लिए भारत भूषण अग्रवाल पुरस्कार, गल्प के लिए कृष्ण प्रताप कथा सम्मान मिल चुके हैं। 'इंडियन एक्सप्रेस सहित कई प्रकाशन संस्थानों ने गीत को भारत के दस सर्वश्रेष्ठ लेखकों में शुमार किया है।

कुछ प्रमुख कृतियां : आलाप में गिरह, न्यूनतम मैं

विविध : 'मदर इंडिया' कविता के लिए वर्ष 2007 का भारत भूषण अग्रवाल पुरस्कार

संपर्क : ई-मेल - geetchaturvedi@gmail.com

शिवकुमार अर्चन की चार ग़ज़लें

शिवकुमार अर्चन की तीन ग़ज़लें

(1)

प्रश्न जब भी उछाला गया
उसको हँस हँस के टाला गया

वो फरिश्ता हुआ आदमी
स्वर्ग से जब निकाला गया

भूख के बर्तनों में सदा
आँसुओं को उबाला गया

प्यास उनकी बुझी न कभी
खून प्यालों में ढाला गया

साँप को बांबियों की जगह
आस्तीनों में पाला गया

रह गई गश्त करते हवा
इस तरह दीप बाला गया

बाग तक कब बहारें गईं
मौसमों का हवाला गया

(2)

सब पे कुछ की हुक्मरानी देखता हूँ
जाने कबसे ये कहानी देखता हूँ

आप देखें रुक्न, बंदिश और 'अरूज
मैं तो ग़ज़लों में रवानी देखता हूँ

हो रही है आरियों में गुफ्तगू
पेड़ की आँखों में पानी देखता हूँ

हैं फिदा तकरीर पर उसकी सभी
मैं तो उसकी लमतरानी देखता हूँ

दर्द आखिर दर्द है तड़फाएगा
दर्द पर आई जवानी देखता हूँ

आ गए हैं पास में शायद चुनाव
कुर्सियों की मेहबानी देखता हूँ

(3)

दर्द-ओ-ग़म इज़्तिराब रहने दे
जिगर में इंकलाब रहने दे

जानता हूँ मैं हक़ीकत इनकी
फिर भी आँखों में ख्वाब रहने दे

मत हटा जाम सहर होने तक
इसमें थोड़ी शराब रहने दे

ये भरम ही तो मेरा जीवन है
अपने रुख पर नकाब रहने दे

मेरी आँखों में अय मेरे मौला
आग रहने दे आब रहने दे

बाद मुद्दत के तू मिला है मुझे
अब पुराना हिसाब रहने दे

मैं फरिश्ता नहीं हूँ इंसा हूँ
जो हूँ अच्छा खराब रहने दे

(4)

जंग है जद्दोजहद है हर किसी की ज़िन्दगी
रोटियों का कीर्तन है आदमी की ज़िन्दगी

कौन कब जाए यहाँ से, कौन कब आए यहाँ
इस धुएँ से उस धुएँ तक है सभी की ज़िन्दगी

अश्क कारिंदा है दर पर ग़म के साहूकार का
एक लमहा भर नहीं है ये खुशी की ज़िन्दगी

रेत, पत्थर, शंख, सीपी, घाट, टीले और ढलान
बूँद से सागर तलक है बस नदी की ज़िन्दगी

अब उठो भी हाथ में सर, पाँच में ठोकर लिए
और कितने दिन जिओगे बेबसी की ज़िन्दगी

हैं वही चौसर, वही पाँव, वही मक्कारियाँ
हर सदी में दाँव पर है द्रोपदी की ज़िन्दगी

जोड़ बाकी करने वाले साथ में क्या ले गए
जो किसी के काम आए है उसी की ज़िन्दगी

हम नहीं शायर, फकत हैं अर्दली अल्फाज़ के
हमसे है महफूज़ अब तक शायरी की ज़िन्दगी

शिवकुमार अर्चन

जन्म : 5 अक्टूबर 1946 (नरसिंहपुर म.प्र.)

प्रकाशित कृतियाँ : ग़ज़ल क्या कहे कोई (ग़ज़ल संग्रह) उत्तर की तलाश (गीत संग्रह) सप्तराग (राजधानी के सात प्रतिनिधि गीतकारों का संपादन) ऐसा भी होता है (लोकप्रिय गीतों का संकलन) आवाज की परछाइयां (ग़ज़ल संकलन शीघ्र प्रकाश्य)।

सम्मान : लोकमाला सम्मान, निराला सम्मान, विद्यापति सम्मान, नरसिंहपुर का नागरिक सम्मान, 1973 में म.प्र. विधानसभा द्वारा सम्मानित, शब्द शिल्पी सम्मान (अभिनव कला परिषद) एवं कई राष्ट्रीय काव्य मंच, कई साहित्यिक संस्थाओं द्वारा सम्मान।

सम्प्रति : भारत संचार निगम से सेवानिवृत्त, अब स्वतंत्र लेखन।

संपर्क : 10 प्रियदर्शिनी ऋषि वेली, ई-8 गुलमोहर एक्सटेंशन भोपाल- 462039

मोबाइल : 094253-71874 दूरभाष 0755-2427550

ई-मेलः shivkumararchan@gmail.com

दामोदरदत्त दीक्षित

संपर्क :- 1/35 विश्वास खण्ड, गोमती नगर,
लखनऊ-226010 (उ.प्र.) फोन-094155-16721

जन्म : 25 दिसम्बर 1949, अतरौली, लखनऊ।

शिक्षा : लखनऊ विश्वविद्यालय से एम.ए. (प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व), पी-एच्.डी. (एग्रीकल्चर, इरिगेशन ऐण्ड हार्टीकल्चर इन ऐन्शिएण्ट श्रीलंका) तथा पालि एवं जर्मन भाषाओं में प्रोफिशिएन्सी।

प्रकाशित पुस्तकें : इतिहास- प्राचीन श्रीलंका इतिहास, एग्रीकल्चर, इरिगेशन ऐण्ड हार्टीकल्चर एन ऐन्शिएण्ट श्रीलंका। **कहानी संग्रह** - दरवाजे वाला खेत, हुद्देदार, अलगी-अलगा, अनोखी आधुनिक कहानी, प्रेम सम्बन्धों की कहानियाँ, गाँव की चुनिन्दा कहानियाँ। **यात्रा संस्मरण -** अटलान्टिक-प्रशान्त के बीच, रोम से लंदन तक, जापान, फिर अमेरिका (यात्रा-वृत्त) **विदेश भ्रमण -** श्रीलंका, नेपाल, अमेरिका, इटली, वैटिकन सिटी, आस्ट्रिया, स्विटजरलैण्ड, जर्मनी, बेल्जियम, नीदरलैण्ड, फ्रान्स और जापान। **अन्य :** कथा-साहित्य पर चौ.चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ से शोध रचनाएँ गुजराती, पंजाबी, उड़िया और अंग्रेजी में अनूदित।

उपन्यास - धुआँ और चीखें। **विविध -** जैसे उनके दिन बहुरे (लोककथा संग्रह), विकटवन के विचित्र किस्से (लघुकथा संग्रह), हम न भूलेंगे तुम्हें (व्यक्तिचित्र-संग्रह), बेजुबानों की कहानी (अनुवाद) (मेनका गांधी की पुस्तक 'हेड्स ऐण्ड टेल्स' का अनुवाद, मटियानी - मेरी नजर में, अपने पत्रों में (संस्मरण-पत्र), भिक्षु बुद्धमित्र महाथेरो अवदान-ग्रंथ (सम्पादन), अटलान्टिक- प्रशान्त के बीच (अमेरिका-प्रवास की डायरी, मुझे भी कुछ कहना है (लेख-संग्रह) **व्यंग्य-संग्रह** - आत्मबोध, सबको धन्यवाद, चंद बेहूदा हरकतें, प्रतिनिधि व्यंग्य, ऑपरेशन महुआ, 51 श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, हम टायर होंगे, रिटायर नहीं, साहित्यिक जगत् के व्यंग्य।

संप्रति - चीनी उपायुक्त के पद से सेवानिवृत्त, **प्रथम रचना :** धर्मयुग (15 अप्रैल, 1973) में प्रकाशित।

अन्य - कथा-साहित्य पर चौ.चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ से शोध। रचनाएँ गुजराती, पंजाबी, उड़िया और अंग्रेजी में अनूदित।

सम्मान : 'जैसे उनके दिन बहुरे' पुस्तक उ.प्र. हिन्दी संस्थान से पुरस्कृत-1990, परिवेश सम्मान-1999 (चंदौसी), राष्ट्र गौरव सममान-2000 (गाजियाबाद), भारती सेवा-भूषण सम्मान 2001 (बरेली), लघुकथा शिल्पी सम्मान-2003 (गाजियाबाद), फिल्म मीडिया एवार्ड-2005 (मेरठ), शिवकुमार शर्मा 'शिवांशु' सम्मान-2007 (शाहजहांपुर), 'धुआँ और चीखें' उपन्यास पर आचार्य निरंजननाथ सम्मान-2008 (काँकरोली), 'धुआँ और चीखें' उपन्यास पर उ.प्र. हिन्दी संस्थान का प्रेमचंद नामित पुरस्कार-2009 (लखनऊ), 'धुआँ और चीखें' उपन्यास पर अम्बिका प्रसाद दिव्य स्मृति प्रतिष्ठा पुरस्कार-2009 (भोपाल) 11. 'हम टायर होंगे, रिटायर नहीं' (व्यंग्य-संग्रह) पर उ.प्र. हिन्दी संस्थान का हरिशंकर परसाई नामित पुरस्कार, 2014

बात-बात में बात

दामोदर दत्त दीक्षित

देखते-देखते पिछले लगभग पच्चीस सालों में बहुत कुछ बदल गया है। अपवादों को छोड़ दिया जाये, तो हिन्दी लेखन-जगत जी-हुजूरी, चाटुकारिता और आदिम बार्टर-युग में लिथड़ रहा है। कुछ महन्तनुमा, गद्दीधारी लेखक और सम्पादक वैसे तो सामन्तवाद की आलोचना करते नहीं थकते, पर आचरण में स्वयं किसी चाटुकार-प्रेमी सामन्त से कम नहीं हैं। इनके यहाँ रचना का प्रकाशन-ऊर्ध्वीकरण, सम्मान-पुरस्कार आदि प्रदान किया जाना चाटुकारिता, ढोलवादन और 'इस हाथ से लेनी उस हाथ से देनी' के बार्टर सिस्टम का प्रतिफल होता है। 'तुम मेरी पीठ सहलाओ, मैं तुम्हारी' का ज़माना खराना है और लोग इसमें सिर से पाँव तक लिप्त हैं। अपने सगे भाई, सगी पत्नी तथा सगी प्रेमिका को सम्मानित-पुरस्कृत करवाने में कुछ वरिष्ठ-गरिष्ठ गद्दाधारी लेखक आकाश-पाताल एक कर देते हैं। ऐसी आपाधापी मची है जैसे दुनिया जल्द ख़त्म होने जा रही है। यह सब देखकर रोने की स्टेज पार हो गई, अब तो हँसी छूटती है।

कुछ लेखकों-सम्पादकों ने तो अध्यक्ष, उद्घाटनकर्ता, व्याख्यानदाता, लोकार्पणकर्ता और प्रशस्तिवाचक के रूप में अपनी दुकान सजा रखी है।

लेखन मुझे सिर उठाकर चलने की शक्ति प्रदान करता है। ऐसे में लेखकों, सम्पादकों, पुरस्कारप्रदाताओं, सम्मेलन-सभा समारोह नियन्ताओं, फेलोशिप उपलब्धकर्ताओं और विदेश यात्रा सुलभकर्ताओं की क्यों जी-हुजूरी, चिरौरी-चाटुकारिता की जाए? हाँ, सम्मान ज़रूर किया जा सकता है, पर कोरे-वायवीय सम्मान से कुछ लोगों का पेट नहीं भरता। जब सरकारी नौकरी में था, रोज़ी-रोटी का सवाल था, तब भी कार्य और ईमानदारी के जुड़वा पहियों के बल पर गाड़ी खींचता रहा। वहाँ भी उच्चाधिकारियों-मंत्रियों की जी-हुजूरी और चाटुकारिता नहीं की। ऐसे में लेखन-जगत में ही क्यों नाले में धोकर हाथ गंदे करूँ? यह न समझा जाए कि सम्मान-पुरस्कार वग़ैरह-वग़ैरह के विरूद्ध हूँ। वह जी-हुजूरी, दरबारगिरी, जुगाड़बाजी और आयात-निर्यात यानी सौदेबाजी के बगैर मिले, तो बग़ैर नाटक किए स्वीकार कर लूँगा, किया भी है। लेखन-जगत में प्रबंधन-संस्कृति पुष्पित-पल्लवित हो गई है। पैसे, प्रचारतंत्र और प्रयोजन के बल पर चर्चित-प्रचारित-प्रशंसित हुआ जा सकता है। इसी के बल पर लेखन से जुड़े भ्रष्ट अफसर, भूतपूर्व भ्रष्ट अफसर, अन्यथा धनाढ्य लोग और उनके वृहत्तर परिवारीजन महान लेखक सिद्ध किए जा रहे हैं। कुछ लेखकगण मार्केटिंग मैनेजर की तरह थैला और थैली लेकर आत्मप्रचार और आत्मप्रयोजन के लिए निकल पड़ते हैं जो अशोभनीय ही नहीं, हास्यास्पद भी लगता है। अंग्रेजी मुहावरे का इस्तेमाल करें, तो यह 'मेरा चाय का प्याला' नहीं हो सकता। मैंने अभी तक किसी पुस्तक का लोकार्पण नहीं करवाया। गोष्ठी प्रयोजन का तो साहस नहीं जुटा पाया।

लेखक को राजनीतिक दलों का पिछलग्गू नहीं बनना चाहिए। आज स्थिति यह हो गई है कि विभिन्न राजनीतिक दलों की घोषित विचारधारा और वास्तविक आचरण में दरार नहीं, बहुत बड़ी खाई है। उनकी कार्यप्रणाली, राजनीतिक अपसंस्कृति और सत्तामोह कमोबेश एक जैसा है। दलों में इस बात की होड़ हो रही है कि कौन कितना ज्यादा गिर सकता है। विचारधारा के नाम पर राजनीतिक दल का पिछलग्गू बनने से, उसके बँधुआ मज़दूर बनने से दल के ग़लत कार्यों पर मौन रह जाना पड़ता है और कभी-कभी ग़लत कार्यों का 'ब्रीफहोल्डर' बनना पड़ता है। दूसरी ओर, विरोधी राजनीतिक दलों के यत्किंचित अच्छे कार्यों में बुराई तलाशने की काकचेष्टा का अभ्यास होने लगता है। लेखक 'सेलेक्टिव प्रेज' और 'सेलेक्टिव क्रिटिसिज्म' का शिकार हो जाता है। यह स्थिति कुल मिलकर राजनेताओं के लिए लाभ की होती है। लेखक एकजुट होकर राजनीतिक दलों पर सदाशयी दबाव नहीं बना पाते, चाहे कितना ही महत्त्वपूर्ण मुद्दा हो जबकि पश्चिम में यह वर्ग दबाव बना पाने की स्थिति में होता है। आज हिन्दी लेखकों के तीन प्रमुख संगठन तीन अलग-अलग राजनीतिक दलों से सम्बद्ध हैं। अगर ये लेखक संगठन और इनसे असम्बद्ध लेखकगण आपसी अस्पृश्य भाव त्यागकर महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर एकजुट हो जाएँ, तो बेहतर चेतना पैदा की जा सकती है और नीतिनियन्ता राजनीतिक दलों पर बेहतर दबाव बनाया जा सकता है। यह अर्थ न लिया जाए कि मैं राजनीतिक व्यक्तियों को अस्पृश्य मानने का पक्षधर हूँ। लेखक को राजनीतिक व्यक्तियों से सम्बन्ध रखने में कोई बुराई नहीं, बुराई उनसे वैचारिक-व्यावहारिक तौर पर नाभिनालबद्ध होकर पिछलग्गू हो जाने में, बँधुआ मज़दूर बन जाने में है।

आज हिन्दी लेखन-जगत में छद्म इस कदर हावी है कि लेखक खुद राजनेताओं की चाटुकारिता-प्रशस्तिवाचन कर हर रंग की सरकार से पद, सम्मान, पुरस्कार, अकादमी सदस्यता-अध्यक्षता, फेलोशिप, विदेशयात्रा जैसे लाभ दुहते हैं, पर लेखन में मसीहाई अंदाज़ से इस प्रवृत्ति की आलोचना करते हैं। जो 'संतन को कहाँ सीकरी सो काम' की दुहाई देते हैं, वे नीम अँधेरे में, नज़रें चुराते हुए सीकरी के बुलन्द दरवाज़े पर कटोरा लिए खड़े रहते हैं।

मैं किसी भी लेखक-संगठन का सदस्य नहीं हूँ। इस स्थिति में लेखन-जगत में नुक्सान उठाना पड़ता है, 'सपोर्ट बेस' नहीं बन पाता। इन संगठनों में आलोचक कुँवरपाल सिंह जैसे कुछ उदार प्रवृत्ति के लोग होते हैं, पर ज़्यादातर लोग संगठनीय जातिवाद के चलते ग़ैर को अस्पृश्य मानकर चलते हैं। उनकी सोच इस मामले में जार्ज बुश जैसी होती है- ''या तो आप मेरे साथ हैं या शत्रु के साथ हैं।'' पर मैं संतुष्ट हूँ। बोलने की आज़ादी मेरे पास सुरक्षित है- बोल कि लब आज़ाद हैं...। आकाश में निर्बन्ध उड़ सकता हूँ...। आवाज़ पर किसी भी लेखक-संगठन या राजनीतिक दल का पहरा नहीं है। अगर हिन्दी लेखकों का एक संगठन होता जो किसी भी राजनीतिक दल से सम्बद्ध न होता, जिसमें हर प्रकार के दृष्टिकोण को रखने की आज़ादी होती, तो मैं उसका सदस्य ज़रूर बनता, पर ऐसा है नहीं। लेखकीय स्वतंत्रता के बारे में मुझे चेखव का यह कथन बहुत सटीक लगता है, ''मैं एक स्वतंत्र लेखक हूँ और स्वतंत्र लेखक बने रहना ही मेरी अभिलाषा है। मेरे लिए मनुष्य का शरीर, उसकी बुद्धि, उसका ज्ञान-, उसकी आशा-निराशा, उसका प्यार, सब कुछ पवित्र है, लेकिन इस सबसे अधिक आदरणीय है उसकी स्वतंत्रता जो झूठ, अहंकार, ढोंग और क्रूरता से मुक्त हैं।''

आज समाज के हर वर्ग में चरित्र का संकट है जो बहुत-सी दुरवस्थाओं का जनक है। बेशक लेखक समाज का अंग है, पर वह विचार से जुड़ा है, जागरुक है, उसकी मार्गदर्शक की भूमिका है। इसलिए उससे कहीं अधिक नैतिकता की अपेक्षा की जाए तो गलत न होगा। उसी तरह जैसे लोगों को न्यायालय से कहीं ज्यादा अपेक्षा रहती है। व्यक्ति जब हर जगह से थक-हारकर निराश हो जाता है, तब बड़ी ही आशा और विश्वास के साथ न्यायालय का दरवाज़ा खटखटाता है। ऐसे में न्यायपालिका की जिम्मेदारी बढ़जाती है। लगभग ऐसी ही स्थिति लेखक की है। जहाँ तक मेरे सोच, मेरी विचारधारा का प्रश्न है, मैं अपने को विपन्न, वंचित, पीड़ित, असहाय और असमर्थ जनों के साथ खड़ा पाता हूँ। इस वर्ग के लोग किस जाति के हैं, किस धर्म के हैं, किस क्षेत्र के हैं, ये मेरी चिन्ता के विषय नहीं है। मेरे लिए वही नीति ठीक है, जो इस वर्ग के पक्ष में है। किसी भी नीति को परखने का यह मेरा अपना पैमाना है। इसे आप किस राजनीतिक या सामाजिक विचारधारा से जोड़ते हैं, यह आपकी मर्जी है। विपन्न-वंचित पीड़ित वर्ग के प्रति प्रतिबद्धता मुझे लेखकीय प्रतिबद्धता से कहीं बड़ी गलती है या यों कहा जा सकता है कि मेरी लेखकीय प्रतिबद्धता उसी वृहत प्रतिबद्धता का अंग है।

पिछले कुछ वर्षों से स्त्री-विमर्श और दलित-विमर्श चर्चा में है जिसने अब फैशन, प्रचार और राजनीति का रूप ले लिया है। सच तो यह है कि जेन्यूइन लेखक इन विमर्शों के पहले से ही स्त्रियों और दलितों की दुरवस्था को लेकर उद्वेलित होते रहे हैं और उनके बारे में संवेदनशीलता से लिखते रहे हैं। आगे भी ऐसा करते रहेंगे भले ही स्त्री-विमर्श और दलित-विमर्श का आन्दोलनी स्वरूप अन्य आन्दोलनों की तरह छीज जाए। फिर भी इन दोनों विमर्शों के पक्ष में हूँ क्योंकि लगभग सत्तर प्रतिशत बकवास, कुतर्क और पिष्टपेषण (जिससे न सम्पादक ऊब रहे हैं न लेखक!) के बावजूद लगभग तीस प्रतिशत सार्थक, सटीक, तथ्यपरक और तर्कसंगत चर्चा होती है जो निश्चय ही महत्त्वपूर्ण है।

दलितों के बारे में दलित ही लिख सकता है, इस नवीन अवधारणा से मेरी विनम्र असहमति है। असल चीज़ संवेदना है, चीज़ों को गहराई से महसूस करना है। एक ग़ैर-दलित लेखक भी दलितों के प्रति उतनी ही गहरी संवेदना रख सकता है जितना कि एक दलित लेखक। किसी की संवेदना पर अकारण संदेह करना या उसे प्रतिबन्धित करने की चेष्टा औचित्यपूर्ण नहीं है। अभी तक कोई संवेदनामापक-यंत्र ईजाद नहीं हुआ कि नापकर बताया जा सके कि अमुक की संवेदनाएँ नकली हैं या सूचकांक में तेंतीस प्रतिशत से कम अंक होने के कारण वह उत्तीर्णयोग्य नहीं है। अगर मान लूँ कि दलित के बारे में दलित ही लिख सकता है, तो इस सिद्धान्त के चलते यह भी मानना पड़ेगा कि मैं स्वजातीय विषयों के अलावा कुछ नहीं लिख सकता। ऐसी किसी सीमा या घेरे में सिमटकर रह जाना मुझे मंजूर नहीं। अगर स्वजातीय घेरे तक सीमित रहा जाए तो आत्मकथा और चंद मोनोटोनस रचनाओं के अलावा कुछ नहीं लिखा जा सकता। लेखकीय चुनौती भी एक दायरे में सिमट कर रह जाएगी।

भगवान बुद्ध आज से लगभग ढाई हज़ार साल पहले दबे-कुचले लोगों के प्रति संवेदित हुए, उनमें चेतना जागृत की जबकि वह क्षत्रिय राजपुरुष यानी गैर-दलित थे। उनके समतावादी विचारों के कारण आज बड़ी संख्या में दलित उनके अनुयायी बने हैं। वे कुछ हिन्दी लेखकों की तरह उन्हें इस आधार पर ख़ारिज नहीं कर देते कि वह ग़ैर-दलित थे, इसलिए उनकी संवेदनाएँ नकली थीं।

आजकल लेखक और पाठक के बीच बढ़ती दूरी की अक्सर चर्चा होती है। इसका एक प्रमुख कारण पठनीयता का अभाव है। लेखक पठनीयता की ओर ध्यान न दे और अपेक्षा करे कि पाठक उसकी रचना को गले लगा ले, तो यह संभव नहीं। लेखक अगर तय कर ले कि वह स्वयं अपने, चंद आलोचकों और लेखकों के 'अन्तःसुखाय' लिख रहा है, तब तो कोई संकट नहीं। पर अगर वह पाठकों से जुड़ना चाहता है, तो पठनीयता का भी ध्यान रखना होगा। इस संदर्भ में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्द द्रष्टव्य हैं, ''जिसका लगना सबको लगे, वह कवि है, जिसका लगना सिर्फ़ उसे लगे, औरों को नहीं, वह पागल है। जो सबको लगे वह अर्थ है, जो एक ही को लगे, वह अनर्थ है।'' यह बात साहित्य की अन्य विधाओं पर भी लागू होती है।

कथाकार प्रेमचंद की रचनाओं की लोकप्रियता का एक कारण पठनीयता है। आज जो उनकी अनावश्यक आलोचना का फैशन चला है, उसके पीछे विवाद खड़ाकर स्वयं को अथवा किसी अन्य लेखक को ऊपर उठाना होता है या फिर विशुद्ध जातिवाद कारण होता है। कुछ लोग कालिदास, तुलसीदास, प्रेमचंद जैसे पुराने लेखकों को आधुनिक मूल्यों की कसौटी पर कसने की कोशिश करते हैं जो अधूरा मूल्यांकन होता है। वास्तव में पुराने लेखकों का मूल्यांकन द्विस्तरीय होना चाहिए। सर्वाधिक औचित्यपूर्ण मूल्यांकन वह होता है जो लेखक के समसामयिक मूल्यों के आधार पर किया जाता है। आख़िर लेखक को उसके कालखण्ड से कैसे काटा जा सकता है? द्वितीय स्तर में आज के मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में उसकी चर्चा होना चाहिए। अगर आधुनिक मूल्यों पर पुराना लेखक खरा नहीं उतरता, तो यह विस्मयजनक न होकर स्वाभाविक स्थिति है। इस द्विस्तरीय मूल्यांकन से ही वास्तविक और पूर्ण मूल्यांकन हो सकेगा।

कुछ चर्चा कहानी के बारे में। मेरे विचार से कहानी का प्राथमिक और अनिवार्य तत्व कहानीपन यानी कथावस्तु ही हो सकता है। उनमें गति होनी चाहिए, प्रवाह होना चाहिए। गतिहीन या मंथर गति वाली कहानियाँ जिनमें कहानीपन नहीं होता, ज्यादातर पाठकों के लिए महाउबाऊ यानी दण्ड का पर्याय सिद्ध होती है और वे दो-चार पैराग्राफ झेलकर भाग खड़े होते हैं। कहानी में शिल्प की स्थिति मिर्च-मसाले जैसी होती है। अगर ज़्यादा हुआ, तो लोग 'सी-सी' करते नज़र आएँगे, कम हुआ तो व्यंजन में स्वाद नहीं आएगा। शिल्पगत वैशिष्ट्य या चमत्कार उसी सीमा तक होना चाहिए जिस सीमा तक वह कथा का वाहक बना रहे, बाधक नहीं। कुछ लेखक और समालोचक पंक्ति-दर-पंक्ति बिम्ब विधान, सिर चकराऊ प्रतीक और दूरागत संकेतों से युक्त शिल्पगत अतिरेक-अतिवाद-अतिचार पर इस कदर मुग्ध हो जाते हैं कि 'शिल्प-शिल्प' चिल्लाते रहते हैं जबकि ऐसी कहानियाँ ढाँचे से बाहर जाते हुए महाउबाऊ, दुर्बोध, नीरस प्रवाहरहित और अपठनीय हो जाती हैं। आगे आने वाले समय में ऐसी कहानियों को शायद पाद टिप्पणियों के बग़ैर समझना संभव न हो। ध्यान दिलाना चाहूँगा। कालिदास आज भी याद किए जाते हैं, पदे-पदे गुद्दल शिल्प परोसने वाले श्रीहर्ष को कोई नहीं पूछता। कथावस्तु और शिल्प के समुचित संतुलन के विषय में कथाकार-आलोचक जगदम्बा प्रसाद दीक्षित का कथन द्रष्टव्य है, 'वस्तु और शिल्प के बीच कोई युद्ध नहीं होना चाहिए। वस्तु अपने अनुरूप शिल्प का निर्माण करता है। शिल्प को वस्तु के अनुरूप होना होगा। शिल्पवाद एक बेकार चीज़ है। वस्तु के बिना शिल्प का अस्तित्व नहीं है।''

जहाँ तक व्यंग्य लेखन की बात है, मैंने भ्रष्टाचार, शोषण, उत्पीड़न, झूठ, छद्म, दोमुँहापन, दायित्वहीनता, अकर्मण्यता, अहम्मन्यता, अंधविश्वास आदि दुष्प्रवृत्तियों पर व्यंग्य लिखे हैं। व्यंग्य में कभी कथा-शैली अपनाई है, कभी निबंध-शैली और कभी संवाद-शैली। मेरा उपन्यास 'धुआँ और चीखें' मुख्यतः पाकिस्तान की फ़ौजी हुकूमत के ख़िलाफ छेड़े गए लोकतांत्रिक अंदोलन और लोकतंत्र की स्थापना की जद्दोजहद को लेकर है। कुछ लोगों ने सवाल किया कि उपन्यास पाकिस्तान की स्थितियों पर क्यों? यानी कि आप अपनी संवेदना को पड़ोसी देश तक- जो कभी अपना देश था और साँझी विरासत वाला है- विस्तार दें, तो विस्मय का बिन्दु होता है! मुसलमानी परिवेश पर लिखने पर भी लोगों को विस्मय हुआ। पर मेरा मानना है कि लेखन का क्षेत्र एक प्रगतिशील वैवाहिक विज्ञापन की तरह होता है जिसमें लिखा जाता है- 'कास्ट ऐन्ड रेलिजन नो बार।'

मैंने लघुकथाएँ, संस्मरण, यात्रा-वृत्त, व्यक्तिचित्र, डायरी, लेख आदि भी लिखे हैं। जिन विधाओं में नहीं लिखा है, उनके प्रति भी सम्मान भाव है क्योंकि लेखन स्तरहीन हो सकता है, विधा नहीं।

पढ़ने के लिए कोई विषय त्याज्य नहीं है, पर इतिहास, साहित्य और दर्शन में विशेष रुचि है। मैं कभी भी, कभी भी लिख सकता हूँ। उसके लिए एक अदद पेन और कागज़ की दरकार होती है। मुझे न किसी चीज़ की तलब लगती है और न ही मूड बनाने की ज़रूरत होती है। जब सरकारी नौकरी में था, तो लेखन के लिए समय चुराना पड़ता था। मेरा बहुत-सा लेखन डाक बँगलों, गेस्ट हाउसों, रेलवे स्टेशनों और चलती ट्रेनों में हुआ है। पर मुझे तुरंत कुछ लिखकर देने में संतुष्टि नहीं होती। विचार चलता है, विचार पकता है, तब लिखता हूँ। एक ही रचना को कई-कई बार संशोधित करता हूँ। लेखन के लिए अनुभव, संवेदना और अभिव्यक्ति अनिवार्य तत्त्व है। मेरी कोशिश रहती है कि विषय थोड़े नए हों, शैली भी थोड़ी भिन्न हो। पर यह दुष्कर कार्य है, सर्वथा सध नहीं पाता। लेखन के सम्बन्ध में मुझे फेदिन का कथन आप्तवाक्य सरीखा लगता है- ''भाषा की पहली शर्त सच्चाई है।'' 'राजतरंगिणी' के लेखक कल्हण का यह श्लोक भी बहुत पसंद है जो राग-द्वेष से ऊपर उठकर इतिहास-लेखन की बात करता है :-

श्लाघ्यः स एव गुणवान रागद्वेषबहिष्कृता।
भूतार्थकथने यस्य स्थास्यत्येव सरस्वती।।

क्या यही बात सर्जनात्मक लेखन पर लागू नहीं होती?

कहानी

धोखाधड़ी डॉट काम

दामोदर दत्त दीक्षित

कविता वेणुगोपाल - सी.ई.ओ., कामकनेक्ट। जानी-मानी कम्पनी का जाना-माना नाम। कम्पनी उसके नाम से जानी जाती थी और वह कम्पनी के नाम से। सिर्फ 43 की उम्र में सारी दुनिया में मशहूर। गेहुँए,छरहरे, मखमली गात पर कमनीयता का निर्दोष प्राकट्य। बड़ी-बड़ी, कजरारी, झील जैसी आँखे। चमकते काले बाल कन्धे तक 'लेयर्ड ब्लन्ट' शैली में कटे हुए। लम्बी, सुडौल नाक। पतले ओठ जिनकी मुस्कुराहट से गहरी यारी। आभूषण के नाम पर गले में पतली चेन।

आन्ध्र प्रदेश के श्रीकाकुलम् जिले के छोटे-से गाँव महेन्द्रपल्ली की कविता वेणुगोपाल मँड़राते-मँड़राते अमेरिका की सिलिकान वैली के पालो आल्टो शहर की मशहूर कम्पनी की सी.ई.ओ. बन बैठी। पाँचवें तक की शिक्षा गाँव के प्राइमरी स्कूल मे, बारहवीं तक की श्रीकाकुलम् मे, बी.टेक आई.आई.टी., मद्रास से और एम.एस. अमेरिका के मैसाचुसेटस् इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नालाजी से। दो साल नौकरी करने के बाद पी-एच.डी. ज्वाइन की और पूरी भी की। ग्रेट लीप फारवर्ड! जब कामकनेक्ट की सी.ई.ओ. बनी, तो दुनिया भर के अखबारों और न्यूज चैनेलों की सुर्खियाँ बनी।

कविता वेणुगोपाल जहाँ-जहाँ कार्यरत रही, जहाँ-जहाँ निवास रहा, जहाँ-जहाँ परिचय-वृत्त रहा, वहाँ-वहाँ दबी जुबान चर्चा जरूर होती रही -- मैडम उच्च शिक्षा प्राप्त हैं, सुयोग्य हैं, सुन्दर हैं, आखिर वह मिस से मिसेज क्यों नहीं बनीं' पुरुष होता, तो भले ही कोई हँसी-मजाक के लहजे में या अन्यथा पूछ लेता, पर स्त्री होने के कारण कविता से पूछने की कोई हिम्मत नहीं जुटा सका। वैसे ज्यादातर का मानना था कि मैडम सुपर कैरियरिस्ट हैं, दायित्वों के निर्वहन में सिर से पैर तक डूबी रहती हैं। शादी की फुर्सत ही कहाँ रही ?

जब कविता ने एम.एस. का पहला साल पूरा किया था, तो उसे समर ट्रेनिंग के लिए सेन्टा क्लारा के इन्टेल कापोरेशन भेजा गया। साल भर बाद जब एम.एस. पूरा हुआ, तो चार बड़ी कम्पनियों के आफर मिले जिसमें इन्टेल भी था। उसने साफ्टवेयर इंजीनियर के रूप में इन्टेल ज्वाइन कर लिया।

पी-एच.डी. खत्म भी नहीं हुई थी कि महेन्द्रपल्ली में बैठे घर वालों ने विवाह के लिए दबाव बनाना शुरू कर दिया। विदेश में कैरियर बना रही अत्यंत सुशिक्षित सुयोग्य कन्या के लिए गाँव या उसके आस-पास उपयुक्त वर मिलने से रहा। इसलिए वर की खोज हेतु आधुनिक तरीका अपनाया गया यानी वैवाहिक वेबसाइटों का सहारा लेने का निश्चय किया गया। यह कार्य कविता को ही करना था। उसने अपना 'प्रोफाइल' तीन वैवाहिक वेबसाइटों पर पोस्ट कर दिया।

प्रस्ताव तो बहुत-से आए पर जो उपयुक्त लगे, उनमें से ज्यादातर तेलुगु भाषाभाषी थे जो शायद सोचते थे कि वह तेलुगु भाषाभाषी से ही विवाह करना चाहेगी। उधर गैर-तेलुगु भाषाभाषी शायद यह सोचते रहे कि वह गैर-तेलुगु भाषाभाषी से विवाह नहीं करेगी जबकि ऐसा कोई घेरा उसने अपने प्रोफाइल में खींचा नहीं था और 'कास्मोपालिटन' विकल्प को चुना था। वैसे यह भी सम्भव है कि गैर-तेलुगु भाषाभाषियों के बड़े वर्ग ने तेलुगभाषी कन्या से विवाह करना ही न चाहा हो। बहरहाल, इतना तो स्पष्ट था कि तथाकथित आधुनिकता के बावजूद युवावर्ग के ज्यादातर लोग रूढ़ियों से बुरी तरह जकड़े थे, वे जाति-धर्म-क्षेत्र की सीमा से बाहर निकलने को तैयार न थे।

वैवाहिक वेबसाइटों से ज्ञान के नए-नए द्वार खुले, नए-नए अर्थ मिले। पता चला कि 'ह्वीटिश' का मतलब श्याम होता है, 'फेयर' का अर्थ गेहुँआ, 'वेरी फेयर' का मतलब सामान्य गोरा और 'वेरी-वेरी फेयर' या 'एक्स्ट्रीमली फेयर' का अर्थ 'गोरा' हाता है। रूप-रंग अपने हाथ नहीं होता, अपनी-अपनी पसन्द का सवाल होता है और किसी रंग को खराब नहीं कहा जा सकता। असल मुद्दा सच और झूठ का है। इस आधुनिक युग में आप कैसे पढ़े-लिखे और समझदार हैं जो अपने रंग को सही-सही नहीं लिख रहे ? क्यों फोटो को फोटोशाप पर एडिट कर डिस्प्ले करते हैं ? विवाह से पहले जब मिलना-जुलना, देखा-देखी कार्यक्रम होगा तो क्या झूठ पकड़ा नहीं जाएगा? क्या विवाह की पाण्डुलिपि झूठ से लिखी जाएगी?

लड़कों की कमाई ज्यादातर बढ़ा-चढ़ाकर दिखाई जाती है। जो व्यक्ति अपने सम्भावित जीवनसाथी से अपनी सैलरी के बाद में झूठ बोल सकता है, उस पर कैसे भरोसा किया जा सकता है? कुछ अन्य सूचनाएँ भी झूठी या अतिशयोक्तिपूर्ण दिखाई जाती हैं। यहाँ प्रायः 'जो भी है, जैसा है' के बजाय 'जैसा होना चाहिए' की आदर्शमयी, पर झूठ स्थिति प्रदर्शित की जाती है। ऐसे में सही आकलन कर पाना दुष्कर होता है।

कविता वेणुगोपाल कुछ 'मि. राइट' लोगों से मिली -- कुछ से अपनी पहल पर, कुछ से दूसरे पक्ष की पहल पर। ऐसे ही एक 'मि. राइट' थे विनय त्रिपाठी जिनसे सनीवेल के हिन्दू टेम्पल में मिलना तय हुआ। उसने फ्लावरी प्रिन्ट का कुर्ता और क्रीम कलर की सलवार पहनी। हमेशा की तरह गले में चेन डाली। मेक अप के नाम पर फेस क्रीम का प्रयोग किया और ओठों पर न्यूड लिपस्टिक लगायी। चलने को हुई, तो खिड़की पार गैरेज की छत पर चिड़िया चहचहाईं। माँ की सहसा याद आ गई। यहाँ होतीं, तो पक्षियों और उनकी चहचाहट से शुभ-अशुभ का विचार करतीं। माँ की याद आने पर शुभकारी 'दही-शक्कर' का भी स्मरण हुआ। पतले ओठों पर मुस्कुराहट तैर गई। जीने से उतर कर कार निकाली और रिमोट कन्ट्रोल से गैरेज बन्द कर चल दी।

मन्दिर पहुँची विनय से मुख्य दरवाजे के बाहर, हाल के पास भेंट हुई। दोनों ने शिवलिंग पर जल चढ़ाया और विभिन्न देवी-देवताओं और सन्तों की प्रतिमाओं के सामने श्रद्धाभाव से नमन किया। दर्शन के बाद साथ-साथ भोजन जैसा 'प्रसादम्' ग्रहण किया। विनय ने आयोवा यूनिवर्सिटी से एम.एस. किया था और ऐप्पल कम्पनी में सीनियर साफ्टवेयर इंजीनियर था। ठीक-ठाक बातें हुईं। चलते समय कविता ने कहा, ''चलिए, फिर मिलेंगे।''

''मिलेंगे मिलते रहेंगे।'' विनय त्रिपाठी ने लम्बी मुस्कान फेंकी, वेव किया और अपनी कार की ओर बढ़गया।

विनय त्रिपाठी का और उसके फोन का इन्तजार करती रही। नहीं आया। शंका ने अपने चमगादड़ी डैने फैलाने शुरू कर दिए। आखिर एक दिन खद फोन किया। उठा नहीं। कई बार फोन किया, फिर भी नहीं उठा। पीड़ा हुई। मामला आगे न बढ़े पर फोन तो उठाना चाहिए था। इतनी भी कर्टेसी नहीं कि एक टेक्स्ट ही कर दे कि आगे बढ़ना नहीं चाहता। 'मेर्ल शाउवेनिज्म' आड़े आ गया। एम.आई.टी. से एम.एस. होने और उससे ऊँचे पद टीम लीड पर होने को पचा नहीं पाया। यद्यपि आपत्ति होनी चाहिए थी, तो उसे होनी चाहिए थी क्योकि उसका कैरियर बेहतर था, पर्दे ऊँचा था और वेतन ज्यादा था। पर पैर पीछे विनय ने खींचा।

कुछ फोन वार्ताएँ। उसके बाद दोनों पारस्परिक सहमति से पाश एरिया स्टीवेन्स क्रीक के सैन्टाना रो के मैग्गियानोज लिटिल इटली रेस्टोरेन्ट में मिले। औपचारिक बातों के बाद अर्पित अरोड़ा ने प्रस्ताव रखा, ''कविता, चाहता हूँ कि हम दोनों हफ्ता-दस दिन के लिए कहीं बाहर चलें जैसे हवाई द्वीप या अलास्का . . .। कुछ दिन साथ रहकर एक दूसरे को समझ लें, परख ले। उसके बाद विवाह के लिए आगे बढ़ें।''

कविता चौंकी। फिर दृढ़ता से कहा, ''सॉरी अर्पित, मैं इस तरह बाहर नहीं जा सकती।''

महेन्द्रपल्ली के अवशिष्ट संस्कार आड़े आ रहे थे।

''कविता, गलत न समझें। हम बाहर किसी ट्रिप पर जाएँगे, कुछ दिन रिलैक्स होकर साथ रहेगे। तभी एक दूसरे को ठीक से समझ सकेंगे।'' उसने सफाई देते हुए अपना तर्क रखा।

''अर्पित, समझने के लिए बाहर जाने की जरूरत नहीं है -- ऐसा मेरा मानना है। छुट्टी जाएगी वह अलग से। हम यहीं रहते हुए एक दूसरे से मिलकर समझने की कोशिश कर सकते हैं वैसे ही जैसे आज मिले हैं।''

पर मैं नहीं समझता कि इस तरह हम एक दूसरे के करीब आ सकते हैं और समझ सकते हैं। आप इसको सही नजरिये से देखें। अगर हम साथ-साथ ट्रिप पर जाते हैं, तो लौटने के बाद आपको पूरा अधिकार रहेगा कि मुझे रिजेक्ट कर दे। मैं बिलकुल बुरा नहीं मानूँगा और आपकें रास्ते से हट जाऊँगा। उसी तरह लौटने के बाद अगर मैं समझता हूँ कि आपके योग्य नहीं, तो मुझे भी अधिकार रहेगा कि आपके रास्ते से हट जाऊँ।'' उसने कविता को कन्विन्स करने का प्रयास किया।

यानी कि कुछ दिनों तक फ्लर्ट करो, फिर लोकतांत्रिक अधिकार का वास्ता देते हुए विवाह से इन्कार कर दो।

''अर्पित, मैं आपके प्रस्ताव से सहमत नहीं।''

''कविता, आपको लगता नहीं कि हम आधुनिक युग में हैं और हमारी सोच भी उसी के अनुसार आधुनिक होनी चाहिए।'' उसने परोक्ष रूप से कविता को पुरातनपंथी करार दिया।

कविता अपने दृष्टिकोण पर दृढ़रही, ''आधुनिकता तो विचारों से होती है, लगभग अनजान व्यक्ति के साथ ट्रिप पर जाना ही आधुनिकता नहीं है।''

''सॉरी कविता, आपके मामले में मैं आगे नहीं बढ़सकता।'' उसने कंधे उचकाए, स्प्रिंग जैसे झटके से उठा और कविता को अकेला छोड़कर रेस्टोरेन्ट के बाहर चला गया।

कविता बची हुई काफी सिप करने लगी।

वह रेस्टोरेन्ट से बाहर निकली। काले बादल जो कुछ समय पहले तक छाये थे, बगैर बरसे न जाने किस ओर उड़ गए थे और ढकी-तुपी धूप अपने तीखेपन के साथ प्रकट हो गई थी।

पी. हरिकृष्ण। मेक्सिकी रेस्टोरेन्ट 'आन द बार्डर' में भेंट हुई। उसनें अपने बारे में बताया। क्या पसन्द है, क्या नापसन्द है, क्या अपेक्षाएँ हैं, क्या अनपेक्षाएँ हैं, क्या अभिरूचियाँ हैं, वगैरह। कविता से कुछ पूछा तक नहीं। बताने का भी अवसर नहीं दिया। अपने व्यक्तित्व को धो-पोछकर, चमकाकर प्रस्तुत करता रहा। डामिनेटिंग और ऐग्रेसिव लगा। प्रोफाइल में लिखी विशेषताओं से पूरी तरह प्रतिकूल दिखता व्यक्तित्व! अगले दिन कविता ने खुद उसे मना कर दिया। फोन पर इन्कार की वजह पूछता रहा। बताया तो तेलुगु में भद्दी और सड़कछाप शब्दावली पर उतर आया।

'मि. राइट' लोगों से मिलने में डर लगने लगा। कहीं 'आ बैल मुझे मार' वाली स्थिति फिर न हो। सवाल यह कि बगैर आमने-सामने बात किए किसी को जाना-परखा नहीं जा सकता और मिलने के बाद आगे बढ़ने में असमर्थता व्यक्त करे, तो दुश्मनी मोल ले।

अखबार में पढ़ी कुछ घटनाएँ कौंधी . . .। एक युवती ने वैवाहिक वेबसाइट के माध्यम से एक दूरस्थ लड़के से विवाह कर लिया। बाद में पता चला कि वह गारमेन्ट फैक्ट्री का मालिक नहीं, कर्मचारी मात्र है। एक अन्य युवक ने स्वयं को अमेरिका में कम्प्यूटर इंजीनियर बताते हुए एक कम्प्यूटर इंजीनियर युवती से विवाह रचा लिया। अमेरिका आने पर युवती को पता चला कि एक कम्पनी में वह कम्प्यूटर आपरेटर मात्र है और ग्रेजुएट भी नहीं है। बाद में वह पास में रहने वाले एक भारतीय की सहायता से किसी तरह पीछा छुड़ाकर भारत लौट सकी। भारत में ही एक डाक्टर लड़की ने एक डाक्टर लड़के से विवाह कर लिया। दस-एक दिन जब तक मेहमान रहे, ठीक रहा। उसके बाद उसका पति रोज पीने लगा और पीकर मारपीट करना रोज की कहानी हो गई। आखिर उसे वापस मायके जाना पड़ा।

चन्द असफलताओं के बावजूद कविता वेणुगोपाल 'डाट काम' पर 'मि. राइट' की तलाश करती रही। इस क्षेत्र में भले ही सफलता न मिली हो, पर प्रोफेशन के मोर्चे पर सफलता के झंडे गाड़ती रही। इंजीनियर, सीनियर इंजीनियर, टीम लीड, टेक्निकल मैनेजर और सीनियर टेक्निकल मैनेजर। एक दिन ऐसा आया कि लगा 'मि. राइट' मिल ही गए - वह भी सिलिकान वैली मे। लक्ष्मण रेड्डी ऐप्पल कम्पनी में टेक्निकल मैनेजर थे। वह आन्ध्र के ही थे, अनन्तपुर नगर के। प्रदेश एक, भाषा एक, संस्कृति एक और प्रोफेशन एक। दोनों मिले, कई बार मिले। बहुत-सी बातें हुईं। फिर अपने-अपने माता-पिता को खबर दी। दोनों के माता-पिता आपस में मिले। वैवाहिक व्यवस्थाओं के बारे में बातें हुईं। विवाह तय हो गया, तिथि भी तय हो गई। भारत में दोनों घरों में तैयारियाँ भी शुरू हो गईं।

करीब दो महीने बाद रविवार की सुबह लक्ष्मण का फोन आया, ''कविता, एक जरूरी बात करनी है। आप फ्री हैं''

''हाँ, मैं फ्री हूँ इस समय।''

''कविता, आई ऐम सॉरी टु से, मैरिज के मामले में हम अब आगे नहीं बढ़सकते। आई वेरी मच अण्डरस्टैण्ड, दिस विल काज ए ग्रेट इन्कन्वीनियेन्स टु यू। बट दिस इज फाइनल स्टैण्ड फ्राम अवर साइड। आई कान्ट हेल्प इट।''

''लक्ष्मण, क्या कह रहे हो' आई कान्ट बिलीव इट।'' स्वभाव के

प्रतिकूल वह चीख उठी।

''बट यू हैव टू . . .।'' अपने निर्णय पर चट्टान की तरह दृढ।

''अरे विवाह की तारीख तय हो चुकी है। मेरे पिता जी ने श्रीकाकुलम् में सारी बुकिंग करा रखी है। बारात के रूकने का स्थान, हमारे पक्ष के लोगों के रूकने का स्थान, कार्यक्रम स्थल, कैटेरेर, टेन्टेज, यहाँ तक कि पुरोहित जी की भी...।'' वह बाहर से ही नहीं, अन्दर से भी काँप रही थी।

''इसीलिए मैंने पहले ही कह दिया आई ऐम सारी . . . दिस इज फाइनल स्टैण्ड . . . आई कान्ट हेल्प इट . . .।'' टोन ऐसी जैसे फिल्मी संवाद बोल रहा हो।

''पर हुआ क्या जो तुम इस लेट स्टेज पर निर्णय बदल रहे हो'' स्वर में तेजी और तुर्शी।

''दरअसल मेरे पेरेन्ट्स और मैंने तय किया है कि मैं जल्द ही रिलोकेट कर अनन्तपुर में अपनी पेरेन्टल प्रापर्टी सँभालूँ। तुम्हें यू.एस. में ही रहना है। हम नहीं चाहते कि विवाह के बाद मैं और मेरी वाइफ अलग-अलग रहे। यह भी नहीं चाहता कि तुम अनन्तपुर में हाउस वाइफ बनकर रहो और अपना कैरियर चौपट करो। रहना भी चाहो तो रह नहीं पाओगी, इतना जानता और समझता हूँ।'' स्वर ऐसा जैसे कुछ हुआ ही न हो और जीता-जागता व्यक्ति नहीं, प्रोग्रैम किया हुआ रोबो बोल रहा हो।

''पर पहले तो ऐसा कभी नहीं बताया। उल्टे यही कहते रहे कि यू.एस. में ही जॉब करोगे। याद करो, तभी बात आगे बढ़ी थी।'' उसने लक्ष्मण के स्मृति-तन्तुओं को झकझोरा।

''कहा था, पर अब नहीं कहता।'' निर्लज्ज धूर्तता और निपट मुँहफटपना।

''तुम्हें लगता नहीं कि यह निर्णय लेने में तुमने बहुत देर कर दी''

''देर तो हुई पर . . .।'' आगे शब्द ढूँढे नहीं मिले।

''बट दिस इज वेरी बैड। यू हैव काज्ड ए ग्रेट इन्कन्वीनियेन्स टु मी ऐण्ड माई फैमिली। लक्ष्मण, आई ऐम शाक्ड, डिस्टर्ब्ड ऐण्ड परटर्ब्ड। इन फैक्ट, यू हैव डिसीव्ड ऐण्ड हर्ट मी . . .।'' वह फफक पड़ी। जो अन्दर था, बाहर फूट पड़ा।

''इसीलिए मैंने पहले ही माफी माँग ली।'' मक्कारी के पलोथन में लिपटे शब्द।

''आखिरी बार बताओ। क्या यह तुम्हारा फाइनल डेसिशन है''? आखिरी जवाब की चाह में किया गया शायद आखिरी सवाल।

''यह फाइनल डेसिशन है। अगेन आई ऐम . . .।''

''नथिंग मोर।'' कविता ने फोन काट दिया।

मन पैन में चढ़ी चाय की तरह खदबदा रहा था और दिल पनचक्की की तरह धड़क रहा था। इन्हीं लक्ष्मण रेड्डी ने अपने 'प्रोफाइल' में लिखा था -- मैं नैतिक मूल्यों में विश्वास करता हूँ। प्रतिबद्धता मेरी पूँजी है। जो वादा करता हूँ, उसे निभाता हूँ . . .।

वह बिस्तर पर औंधे मुँह पसर गई और जोर-जोर से रोने लगी। पर यहाँ कोई सुनने वाला नहीं। कोई नहीं यहाँ जो सिर पर हाथ फिराकर सांत्वना के दो मीठे बोल बोल सके। रोत-रोते कब आँख लग गई, पता ही न चला।

शाम - जब भारत में सुबह थी - पिता को फोन पर सूचना देते हुए कहा कि सारी बुकिंग कैन्सिल करा दें।

पिता ने पूछा, ''मैं लक्ष्मण के पिता से अनन्तपुर बात करूँ''

कविता ने रोक दिया, ''बिलकुल नहीं। कोई फायदा नहीं। जिसे विवाह करना है वही मुकर गया, तो माता-पिता कुछ नहीं कर सकते। लक्ष्मण उनकी भी नहीं सुनगा, मैं अच्छी तरह से जान गई हूँ।''

पिता का परेशान चेहरा आँखों के सामने तैर गया।

कुछ दिनों बाद कविता ने देखा कि लक्ष्मण एक फिरंग स्त्री के साथ कास्को स्टोर्स में शापिंग के लिए जा रहा है। देखते ही रास्ता बदल दिया। एक अन्य दिन उन्हें थाई रेस्टोरेन्ट में देखा। कुछ दिनों बाद सेन्टा क्रुज बीच पर फिर दोनों दिखे - एक दूसरे से लिपटते, ओढ़ते, बिछाते। तो लक्ष्मण ने झूठ बोला था। वह इण्डिया रिलोकेट नहीं कर रहा। पहले ही उसकी बात पर शक हुआ था। तो निर्णय बदलने की वजह बीच पर उसके साथ घूम रही है!

हवा जिसकी सनसनाहट सितार के मद्धम स्वर की याद दिला रही थी, उसमें अब कोई स्वर नहीं था। अगर कुछ था तो कसैलेपन की लहरें .

. . । ओठ बुदबुदाए -- मैरिज इज नाट योर कप ऑफ टी! विवाह का रास्ता पीछे छूट चुका है ओर वह आगे बढ़चुकी है। पीछे लौटना अब संभव नहीं। मान लेगी कि विवाह प्रोफेशन से हुआ है। भारत में स्त्रियों का विवाह पेड़-पौधों के साथ करने की परम्परा रही है! फिर, जीवन में कई चीजें ऐसी होती हैं जो भूलती नहीं, भुलायी जाती हैं। इच्छा त्याग देने से दुख नहीं होता या कम होता है।

कविता वेणुगोपाल को वर की खोज के लिए न तो पारम्परिक तरीका रास आया था और न ही आधुनिक 'डाट काम' वाला तरीका जो उसके व्यक्तिगत जीवन में 'धोखाधड़ी डाट काम' बनकर उपस्थित हुआ था।

वह अकेले टहल रही थी। बीच की खुनकीली हवा जैसे उड़ा ले जाने को आतुर हो। पर वह सधे कदमों से पैर जमाते हुए आगे बढ़रही थी . . .। सूरज के सागर में समाने में अभी वक्त था।

1/35, विश्वास खण्ड, गोमती नगर,
लखनऊ-226010 (उ.प्र.)
मो.- 9415516721
ईमेल- radhadamodar21@gmail.com

दामोदरदत्त दीक्षित के लेखन पर विद्वानों की प्रतिक्रियाएँ

''गाँव की चुनिन्दा कहानियाँ'' से गुज़रना प्रीतिकर लगा। आपने गाँव को गहरे जिया है। इसलिए उसकी गहराई और व्यापकता का गहरा अनुभव किया है। इन कहानियों में गाँव के सुख-दुख, यातना और संघर्ष, क्रूरता और मनुष्यता के विविध आयामों की अभिव्यक्ति हुई है।...हर कहानी गाँव की किसी-न-किसी बाहरी-भीतरी समस्या से रूबरू हुई है। हर कहानी में आम आदमी की विवशता और सत्ता-व्यवस्था की क्रूरता का तनाव दिखायी पड़ता है जिसमें आम आदमी के जीवन-मूल्य आहत होते दिखाई पड़ते हैं।

रामदरश मिश्र

कथात्मक ढाँचे से राजनीतिक उपन्यास लगने वाला वह उपन्यास 'धुआँ और चीखें' वास्तव में आम जनता की तकलीफों का बयान करने के उद्देश्य से रचा गया है। राजनीतिक तंत्र और सामाजिक जीवन के ताने-बाने से बुने इस उपन्यास के कथानक में मानवीय-सांस्कृतिक सरोकारों की धड़कनें व्याप्त हैं। पूरी तस्वीर विश्वसनीय और प्रभावी हैं, कुछ इस तरह कि देशकालबद्ध और देशकालातीत दोनों की प्रतीति एक साथ होती है। रचना की विशेषता में उसके वस्तु-विन्यास की कसावट और भाषा की सहजता ने वृद्धि ही की है।....कहना न होगा कि इस उपन्यास में सरहद पार के अवाम की ज़िन्दगी तमाम ऊँच-नीच, खुशी-ग़म, संघर्ष-भीरूता, घटत-बढ़त, जुल्म और प्रतिरोध से धड़कते परिवेश की ऐसी विश्वसनीय तस्वीर के रूप में उभरती है, जिसमें कथा-रस, पठनीयता और लिखने वाले की वैचारिक प्रतिबद्धता एक साथ पाठक को अपनी गिरफ्त में लिए रहते हैं।

निर्मला जैन

आपका कहानी-संग्रह 'हुदेदार' प्राप्त हुआ।...कुछ कहानियाँ पढ़गया हूँ और जीवन की आपकी पकड़ से प्रभावित हुआ हूँ। जीवन की गहरी पकड़ है आपके पास, साथ ही आपने उसे बखूबी शब्दों से अभिव्यक्त किया है। स्थितियों को साकार करना आपको खूब आता है। आपकी कुछ कहानियाँ हृदय को छूती ही नहीं, विचारों से उत्तेजित करती हैं और सोचने को विवश करती हैं।

कमल किशोर गोयनका

उपन्यास 'धुआँ और चीखें' की सबसे बड़ी खासियत यह है कि हिन्दुस्तानी नजरिये से लिखे गये तमाम उपन्यासों से अलग यह पाकिस्तान के इतिहास और वहाँ के अवाम के नज़रिये से लिखा गया है। यह लेखक के परकाया प्रवेश जैसा मामला है। मानो उसका मन पाकिस्तान का नागरिक है। भाषा, मुहावरे और किस्सों तक में यह दिखाई देता है। इस्लाम और कुरान का जो मानवीय भाष्य यहाँ मूल रूप में उपस्थित है, उसे देखते हुए फौजी तानाशाही के चंगुल में फँसे पाकिस्तानवासियों से दिली हमदर्दी हो सकती है।

मूलचन्द गौतम

आपकी पुस्तक 'विकटवन के विचित्र किस्से' पढ़कर बहुत हर्ष हुआ।... आपकी पुस्तक हिन्दी लघुकथा क्षेत्र में एक 'लैण्डमार्क' है। लघुकथा में ऐसे शैली-शिल्प के प्रयोग बहुत कम हुए हैं। कई दृष्टियों से आपका संग्रह विशिष्ट और महत्वपूर्ण है।

श्यामसुन्दर घोष

'विकटवन के विचित्र किस्से' पढ़कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। पंचतंत्र की शैली का आपने बहुत अच्छा उपयोग किया है। प्रत्येक किस्से के अंत में संस्कृत की सूक्ति को जिस व्यंग्यात्मक शैली में आपने उद्घृत किया है, वह निश्चय ही प्रशंसनीय है। काश! आज के नटवरलाल आपकी यह पुस्तक पढ़कर किंचित आत्म-संशोधन करते। किन्तु यह दुराशा ही है। उनके सम्बन्ध में सुबोधी लालों का समुदाय ही थोड़ा सचेत हो सके तो भी बड़ी उपलब्धि होगी।

विष्णुकान्त शास्त्री

बहुत बढ़िया बन पड़ी है 'अलग-अलग'। दो कौमें सदियों से इस देश की माटी में कौटुम्बीय जीवन जीती हुई, एक दूसरे की साझी बनी हुई आज अलगी-अलगा पर उतारू हैं- कौन बाँट गया उन्हें? क्यों बँट गईं वे? और बँटीं भी तो ऐसे जैसे न कभी वे साझी हुए, न आगे रह पाने की कोई सूत भर संभावना ही शेष है! विदारक है कहानी का अन्तर्सत्य! जी भरभरा आता है। जो धर्म हमें मनुष्यता सिखाता है, उसे हम कितनी आसानी से अपने भीतर के शैतान के हवाले कर, आड़ में होकर अपना चेहरा छिपाने की कोशिश करते हैं। बधाई 'अलगी-अलगा' के लिए।

चित्रा मुद्गल

दामोदर दत्त दीक्षित के कथा-संग्रह 'अलगी-अलगा' की प्रत्येक कथा अपने परिचय में पृथक है, प्रकार में पृथक है। ये विषय की वस्तुएँ कहीं से भी लें, जीवन से, कर्म से, विचार से या भाव से, किन्तु उनमें कथा-वस्तुओं के दोहराव नहीं हैं, न अनुकरण है और न अनुसरण। वे एक बहुविध और बहुपठ कथासर्जक हैं।...दामोदर के कथापन में विषय और विचार दोनों की सघनता है, भाषा और शिल्प दोनों का कथागत संयोजन है और भाव एवं वस्तु दोनों का गुम्फन है।

रमेश दवे

पशु-पक्षियों को प्रतीक बनाकर इधर दामोदर दत्त दीक्षित तथा विनायक ने बेहतरीन लघुकथाएँ लिखी हैं। दीक्षित की लघुकथाओं में सहज व स्तरीय व्यंग्य भी है। इनमें समकालीन जीवन की कथा कही गई है। डॉ.दीक्षित ने पशु-पक्षियों के बहाने आधुनिक जीवन की विद्रूपताओं को उजागर किया है।

सूर्यकान्त नागर

लघुकथाओं की अभिव्यंजना को और अधिक प्रखर और संप्रेषणीय बनाने के लिए पंचतंत्र, जातक कथाओं आदि से गृहीत पशु-प्रतीकों के उपयोग के छुटपुट उदाहरण मिलते रहे हैं, लेकिन उन प्रतीकों पर पूरी तरह आधारित और लगभग प्राचीन आख्यायिकाओं की-सी भाषा और कथन-भंगिमा में पचास लघुकथाओं का प्रणयन चकित कर देने वाला है। दामोदरदत्त दीक्षित ने 'विकटवन के विचित्र किस्से' में पशु-पक्षियों को प्रतीक रूप में उपस्थित कर कई लक्ष्य साधे हैं।

वेदप्रकाश अमिताभ

व्यंग्य और कथा-लेखक दामोदर दत्त दीक्षित की अमेरिका प्रवास की डायरी 'अटलान्टिक-प्रशान्त के बीच' से गुज़रना एक अलग ढंग का कथात्मक अनुभव देता है।...उनकी डायरी के माध्यम से पाठक लगभग सहयात्रा के अनुभव से गुज़रता है और ठीक उसी तरह वह डायरी में एक कथाकृति की तरह डूब-डूब जाता है। डायरी किसी कथाकृति से कम आस्वादनीय नहीं है- यह एक बड़ी बात है।

प्रेम शशांक

''पाठक से जुड़ाव के लिये लेखक को पठनीयता पर ध्यान देना होगा''

दामोदरदत्त दीक्षित से कमलेश भट्ट 'कमल' की बातचीत

आधुनिक हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, निराला और अज्ञेय आदि ऐसे कितने ही साहित्यकार हुए हैं जिन्होंने कई एक विषयों में सृजन करके साहित्य की श्रीवृद्धि की है। लेकिन वर्तमान में किसी रचनाकार का कई एक विधाओं में सृजनरत होना अच्छी निगाह से नहीं देखा जाता है। वस्तुत: आज के समय को एकविधा के लेखन के रूप में देखा जा रहा है। फिर भी कुछ रचनाकार ऐसे हैं जो एक से अधिक विधाओं में सृजनरत हैं और गम्भीरतापूर्वक लिख रहे हैं। ऐसे ही एक सृजनधर्मी का नाम है- दामोदरदत्त दीक्षित। यहाँ प्रस्तुत है उनसे श्री कमलेश भट्ट कमल द्वारा कुछ समय पूर्व की गई लंबी बातचीत के संपादित अंश।

कमलेश भट्ट : आपकी गति कहानी और व्यंग्य में समान रूप से है। प्राचीन संस्कृति, इतिहास और लोकजीवन भी आपके प्रिय विषय रहे हैं आज के समय में किसी एक विधा पर काम करने वालों को ही महत्त्वपूर्ण बताया जाता है। ऐसे में कई विधाओं पर एक साथ काम करते हुए आपके क्या अनुभव हैं ?

दामोदरदत्त दीक्षित : मुझे लगता है ये चीज अन्दर से निकलती है। इसमें बहुत ज्यादा वश नहीं रहता। एक ललक-सी होती है कि एक विधा में लिखा है तो दूसरी में भी लिखें। जैसे व्यंग्य में लिखा तो लगता है कि कहानी में लिखें। तो इस तरह से चलता रहता है।

दोनों विधाओं में से मन किसमें ज्यादा रमता है ?

यह बता पाना कठिन है। लेकिन कहानी ज्यादा समय लेती है। इसलिए कहा जा सकता है कि इसमें थोड़ी ज्यादा कठिनाई लगती है।

एक रचनाकार के रूप में किस समाज की परिकल्पना आपने की है?

जिस समाज में हम जी रहे हैं, उसमें क्रमशः बेहतरी होती चले, यही समाज की मेरी परिकल्पना है। जैसे गरीबी है तो गरीबी का निदान होता रहे। यही मेरे सोच में आता है।...गरीबी केवल एक उदाहरण है, समाज ऐसी बहुत सी समस्याओं से भरा हुआ है। यदि आम समाज के नजरिये से देखा जाये तो मैं समझता हूँ कि बेकारी देश की सबसे बड़ी समस्या है। अत्यन्त दुखद है कि देश की सबसे बड़ी समस्या की ओर न तो बुद्धिजीवियों का अपेक्षित ध्यान है, न ही राजनेताओं का। इसी प्रकार सामाजिक/आर्थिक विषमता भी एक अहम मुद्दा है।

कहीं ऐसा तो नहीं कि हमारे पास समाज और उसकी समस्याओं को दीर्घकालिक और वृहद् रूप में देखने और समझने के दृष्टिकोण का अभाव रहा हो?

मैं आपकी बात से सहमत हूँ। मैं समझता हूँ कि आजादी के बाद सारी चीजें ऐडहाकिज्म-तदर्थवाद से ही तय होती रहीं। वोट की राजनीति हावी रही और राजनीतिक परिदृश्य में उत्तरोत्तर क्षय ही हुआ है।

इसका कोई विकल्प आपके मस्तिष्क में है?

विकल्प तो यही है कि बुद्धिजीवी, लेखक अथवा जो अन्य जागरुक व्यक्ति हैं, वो लोग अगर निष्पक्ष तौर पर अपनी बात कहें तो राजनेताओं पर दबाव बनाया जा सकता है। हो क्या रहा है कि इस वर्ग के लोग किसी-न-किसी राजनीतिक गुट से स्वयं को जोड़ लेते हैं और उसकी गलत वकालात करने से नहीं चूकते। दूसरी ओर विरोधी राजनीतिक दल के सही कार्यों की वाजिब सराहना का साहस नहीं जुटा पाते। यह स्थिति कुल मिलाकर राजनेताओं के भी लाभ की है। इसमें राजनेताओं पर किसी प्रकार का दबाव नहीं बन पाता है। पश्चिम में ये वर्ग अपेक्षाकृत ज्यादा दबाव बना लेते हैं। हम किसी राजनीतिक सोच अथवा राजनीतिक दल से नाभिनालबद्धता में ही प्रसन्न हो लेते हैं।

तदर्थवाद का मूल कहीं हमारे संविधान या लोकतंत्र में ही तो नहीं है?

तदर्थवाद से मेरा मतलब है कि हम दूर की नहीं बल्कि अगले चुनाव तक की

बात सोचते हैं, जल्दी मिल जाने वाले पद के बारे में सोचते हैं। हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था में कुछ न कुछ कमी ज़रूर है, तभी तो खरीद-फरोख्त और दल-बदल की स्थिति पैदा हो जाती है। पर असल कमी व्यक्ति की है जो नैतिकता की परवाह न कर हर व्यवस्था में छेद करने और रास्ते निकालने लगते हैं।

कहानी के क्षेत्र में पाठकों की समस्या निरन्तर बनी हुई है। तमाम नये लेखक आ रहे हैं, तरह-तरह के शिल्प से पाठकों को रिझाना चाह रहे हैं। आखिर कहाँ चूक हो रही है लेखकों से?

मैं समझता हूँ कि पठनीयता एक ऐसी चीज है जिसके कारण अन्तराल या संवादहीनता की स्थिति उत्पन्न हो रही है। लेखक पठनीयता की ओर ध्यान न दे और चाहे कि पाठक उसकी रचना को गले से लगा लें, तो यह संभव नहीं है। जैसे यह तय कर लें कि हम सिर्फ अपने लिये, आलोचकों व अन्य लेखकों के लिये लिख रहे हैं, तब तो कोई संकट नहीं है। अगर वह पाठकों से जुड़ाव चाहता है तो पठनीयता की ओर ध्यान देना ही पड़ेगा। अधिकांश क्लासिक रचनाओं की खास बात पठनीयता रही है।

आप कहानी की पठनीयता के किन सूत्रों को रेखांकित करना चाहेंगे?

पहला तो यह कि कहानी पाठकों की समझ में आ जाय। इसका मतलब शिल्प से नकार नहीं है। परन्तु शिल्प के प्रयोग पठनीयता को ध्यान में रखकर होने चाहिए। जैसे उदय प्रकाश की कहानियों को ही ले लें। हो सकता है उसमें हर लाइन में बिम्ब और प्रतीकों की भरमार हो -फ्लाइट आप फैंटेसी हो' और वह लेखकों/आलोचकों को पसन्द भी आए। लेकिन सामान्य पाठक के लिये वह मुश्किल ही पैदा करेगा।

हिन्दी में हर लेखक यह दावा करता है कि उसे आलोचना की परवाह नहीं है, लेकिन हर लेखक आलोचक की तलाश भी करता है। आपको क्या लगता है?

लेखक की अगर अपेक्षा है तो वह स्वाभाविक है, पर आलोचक की चाटुकारिता को मैं उचित नहीं समझता। हिन्दी में जिन परिमाण में लेखन हो रहा है उसे देखते हुए आलोचना की बहुत कमी है। जो लोग रचनात्मक लेखन कर रहे हैं अगर वे आलोचना-कर्म बन्द कर दें तो स्थिति अत्यन्त दयनीय हो जाएगी। जरूरत है कि आलोचना के क्षेत्र में बहुत से लोग आएँ।

काशीनाथ सिंह ने एक साक्षात्कार में कहा है कि प्रेमचंद की जमीन साहित्य के लिए अब उपजाऊ नहीं रही है। इस बारे में आपकी क्या राय है?

प्रेमचंद आज भी पाठकों के बीच लोकप्रिय हैं और पठनीय है। उनकी बहुत-सी रचनाएँ ऐसी हैं जो काल की सीमा को तोड़ती है। उनकी आलोचना आज जो होती है तो उसके पीछे आलोचक का मन्तव्य अक्सर विवाद खड़ा करके स्वयं की ओर ध्यान आकृष्ट करना होता है। अथवा किसी लेखक-विशेष को प्रेमचन्द के बहाने से उठाना होता है। एक बहुत बड़ी विसंगति यह है कि हम लेखक-विशेष की आलोचना उसके काल से काट कर करने लगते हैं- चाहे कालिदास हों, चाहे तुलसीदास हों, चाहें प्रेमचन्द। उन्हें आज की परिस्थितियों और मान्यताओं के निकष पर कसना औचित्यपूर्ण एवं तर्कसंगत नहीं है।...जैसे तुलसीदास का ही उदाहरण ले लें। उस समय उन्होंने जाति-व्यवस्था को लेकर जो कुछ लिखा, वह उस समय की मान्यताओं के आधार पर लिखा। अगर उन मान्यताओं और विचारों से हटकर उन्होंने लिखा होता तो विस्मय की बात होती! अन्यथा आज मान्यताओं के बदल जाने के आधार पर उनकी आलोचना करते हुए कोई बड़ा तीर नहीं मारा जा रहा है। उसका उल्लेख तो जरूर किया जाना चाहिए। लेकिन उसे बहुत बड़े शोध या खोज के रूप में प्रस्तुत करना विद्वता का द्योतक नहीं है।

एक तरफ तो कथा क्षेत्र में पाठकों के संकट की बात की जा रही है तो दूसरी ओर लम्बी-लम्बी कहानियाँ तथा बहुत मोटे-मोटे उपन्यास लिखे जा रहे हैं? इस विरोधाभास के पीछे आपको क्या लगता है?

मुझे लगता है कि इसके दौर आते रहते हैं। कुछ लोगों ने लिखा तो बाकी लोग भी लिखना शुरू कर देते हैं। यह भी मान्यता है कि उपन्यास लिखकर ही ज्यादा और अपेक्षाकृत दीर्घजीवी नाम अर्जित किया जा सकता है। कदाचित इस स्थिति में कुछ समय बाद परिवर्तन आए। मेरा मानना है कि लम्बी कहानियाँ और भारी-भरकम उपन्यासों में भी पठनीयता और पाठक को बाँधे रखने की क्षमता हो सकती है।

किताबों का मूल्य भी पाठकीयता के लिये चुनौती बन गया है। पाठक चाहकर भी किताबें नहीं खरीद सकता है। इस विषय में आपकी क्या सोच है?

यह तो पूरे हिन्दी साहित्य का संकट है कि पुस्तकों के दाम इतने अधिक होते हैं कि पाठक उन्हें खरीद पाने की स्थिति में नहीं होता है। जैसे बनारस का हिन्दी प्रचारक संस्थान है, राजकमल के पेपर बैक्स हैं- यदि सभी प्रकाशक सरकारी खरीद में 40-

50 प्रतिशत कमीशन की बात करता है और इसीलिए दाम अधिक रखने की बाध्यता की बात होती है। यह विचित्र किस्म का 'नेक्सस' (दुरभिसन्धि) है। किताबों की दुनिया से अगर कमीशनखोरी समाप्त हो जाय, प्रकाशक भी इसमें सहयोग करें, तथा लेखक के बल पर अनाप-शनाप कमाई का इष्ट न रखें तो शायद पुस्तकों की कीमत कम हो सकती है और पाठकों तक उनकी पहुंच सुगमता पूर्वक हो सकती है।

आज साहित्य में दो मुद्दे प्रमुखता से छाए हुए हैं- स्त्री विमर्श और दलित विमर्श, इन मुद्दों पर आपकी अपनी क्या राय है?

मेरा जुड़ाव गाँव से रहा है, दलितों और स्त्रियों की समस्याओं को मैंने करीब से देखा है। किसी भी लेखक के लिए इन दोनों की स्थितियों को देखकर उद्वेलित होना सहज स्थिति है। लेकिन इन्हें लेकर किसी प्रकार का लेखकीय अभियान/आन्दोलन जैसा छेड़ना कोई बहुत सार्थक कदम नहीं है। क्या यह माना जाय कि जब से हिन्दी में यह अभियान छेड़े गए, उससे पहले दलितों और स्त्रियों की स्थिति बेहतर थी अथवा लेखकों को दिखाई-सुनाई नहीं देता था जो पहले इस तरह के अभियान नहीं छेड़े गये। यह तो कभी एक पब्लिसिटी स्टण्ट लगता है और इस बहाने कुछ लोगों को जोड़ने और खुद को आगे लाने की बात लगती है, अन्यथा जिम्मेदार लोग पहले भी इनके बारे में सोचते और लिखते रहे हैं और आगे भी ऐसा करते रहेंगे। स्त्रियों और दलितों के प्रश्न तो हर लेखक को सहज रूप से उद्वेलित करने चाहिए और अधिकांशतः करते भी है।

एक साक्षात्कार में कथाकार रमेश उपाध्याय ने इन दोनों विमर्शों को राजनीतिक विमर्श की संज्ञा दी है, आपको क्या लगता है ?

साहित्यकार या लेखक इनकी बातों से अपने को काटकर नहीं रह सकता। कोई यदि इनको लेकर राजनीति कर रहा है तो यह दूसरी बात है।

आपकी कहानियों के मुख्य टूल्स क्या है, जिनसे आप कहानियाँ लिखते हैं?

कहानी के विषय तो समाज से ही मिलते हैं। कोशिश रहती है कि विषय थोड़े नये हों तथा शैली भी थोड़ी भिन्न हो यह बहुत कठिन कार्य है। अतः इसमें सफलता कहाँ तक मिलती है, यह आलोचक ही बता सकते हैं।

बात शायद अधूरी रह गयी। भाषा भी एक महत्त्वपूर्ण औजार है?

भाषा को लेकर कोशिश रहती है कि वह सुबोध रहे। परन्तु देशज शब्दों, उर्दू व संस्कृतनिष्ठ शब्दों की जगह अन्य शब्द रखने की जद्दोजहद से बचता हूँ। यह भी जोड़ना चाहूँगा कि जैसे अवधी हमारी बोली है तो अवधी बोलता भी हूँ परन्तु अवधि की जानकारी कहानी में हावी करने की कोशिश नहीं रहती है। चूँकि खड़ी बोली में लिखता हूँ। अतः मैं रचना को खड़ी बोली की है, रचना रखना चाहता हूँ। कभी-कभी यह देखा जाता है कि रचनाकार बोली से जुड़ी रचना होने का आतंक पैदा करने की चेष्ठा करते हैं- इसे मैं ठीक नहीं मानता हूँ। अगर मुझे बोली प्रधान रचना लिखनी होती तो मैं बोली में ही लिखूँगा और खड़ी बोली के विशाल पाठक वर्ग से अनाधिकृत लाभ लेने की कोशिश नहीं करूँगा।

बोलियों के साहित्य और उसकी प्रासंगिकता पर आपकी क्या राय है?

बहुत अहम प्रश्न आपने उठाया है। हिन्दी भाषा एक विशाल भूभाग की भाषा है। इसलिए उसके क्षेत्र में विभिन्न बोलियों का होना एक सहज स्थिति है। लेखक के सामने प्रायः हिन्दी के विशाल पाठक वर्ग का मोह रहता है। इसलिए वह हिन्दी को बोली पर प्राथमिकता देता है। मेरे विचार से हिन्दी भाषा और उसकी क्षेत्रीय बोलियों को सह-अस्तित्व में जीना चाहिए। बोलियो को भी प्रोत्साहन की जरूरत है। बोलियों की भी पत्र-पत्रिकाएँ होनी चाहिए, बोलियों में भी साहित्य रचा जा सकता है और रचा जाना चाहिए।

लेकिन बोलियों और हिन्दी भाषा के साहित्य में प्रायः संवादहीनता रहती है- विशेष रूप से आधुनिक परिप्रेक्ष्य में।

इसमें कोई दो राय नहीं है कि जो स्थान हिन्दी भाषा का है वह बोलियाँ कभी ग्रहण नहीं कर सकती। परन्तु बोलियों में लिखे जाने वाले साहित्य को प्रोत्साहन दिया ही जाना चाहिए, जिससे कि बोलियों का साहित्य अपनी अलग छटा के साथ पुष्पित-पल्लवित होता रहे।

इधर कहानियों में शिल्प के नाम पर एक दूसरी तरह का कलावाद देखा जा रहा है। आप अपनी रचना-प्रक्रिया में शिल्प को किस तरह साधते हैं?

मैं इससे सहमत हूँ कि कहानी में कथ्य ज्यादा महत्त्वपूर्ण होता है। कथ्य के बगैर शिल्प का कोई अर्थ नहीं है और कथ्य का वैविध्य न हो तो सारी रचनाएँ एक जैसी लगेंगी। अगर हम कहानी लिख रहे हैं तो कहानीपन पहली और अनिवार्य शर्त है। बाकी चीजें बाद में आएँगी। शिल्प का अपना महत्त्व है। यह नहीं माना जाना चाहिए कि मैं शिल्प के महत्व को नकार रहा हूँ। शिल्प की स्थिति मिर्च-मसाले जैसी है। अगर जरा भी ज्यादा हुआ तो पाठक उसे हजम नहीं कर पाएगा, कम हुआ तो स्वाद नहीं आयेगा। शिल्प को कथा का वाहक होना चाहिए न कि बाधक।

सृजनात्मक लेखन में नौकरी पेशा अधिकारियों की हलचलें काफी तेज हुई हैं। कुछ लोग इसे साहित्य के लिये अस्वस्थकर मानते हुए इसकी आलोचना करते हैं। आप स्वयं एक बड़े सरकारी पद पर हैं तो इस स्थिति के बारे में क्या सोचते हैं?

यह सोच ही विभेदपूर्ण एवं जाहिलियत भरा है। नौकरी पेशा लोग भी पढ़े-लिखे हैं। यदि उनमें लेखकीय संवेदना है तो उन्हें इस नाते खारिज करना उचित नहीं है कि वे अधिकारी हैं। लेखन से जुड़े व्यक्ति का जीविका का कोई भी साधन हो सकता है। यह कोई तानाशाही का क्षेत्र नहीं है कि अमुक वर्ग विशेष का व्यक्ति लेखन कर सकता है और अमुक वर्ग विशेष का नहीं। यह एक दूसरी तरह का ब्राह्मणवाद है।

समकालीन लेखकों में किन-किन की रचना-धर्मिता से आप इत्तिफाक रखते हैं ?

बहुत से लोगों से इत्तिफाक रखता हूँ। आज हिन्दी में इतने ज्यादा लोग लिख रहे हैं और अच्छा लिख रहे हैं कि चन्द नाम गिना देना छूट गये लोगों के साथ अन्याय होगा।

लेखन में अच्छे-बुरे की पहचान आप कैसे करते हैं?

वैसे देखा जाए तो मोटे तौर पर हर पाठक का अपना अलग पैमाना होता है। जो रचना मुझे अपील कर जाती है, उसे मैं अच्छा लेखन मान लेता हूँ भले ही उस पर आलोचकों की कृपा हो या न हो।

आप पति-पत्नी दोनों ही लेखन से जुड़े हैं। एक-दूसरे के प्रति किस तरह का भाव रखते हैं? राजेन्द्र यादव और मन्नू भंडारी का विवाद तो सार्वजनिक हो चुका है।

हम दोनों में काफी हद तक सामंजस्य एवं समझदारी का भाव है। मेरी पत्नी हर प्रकार से मेरा ख्याल रखती हैं और मैं भी कोई ऐसा काम नहीं करता कि उन्हें चोट पहुँचे या उनके सम्मान को ठेस लगे। हम दोनों ही एक-दूसरे की भावनाओं का सम्मान करते हैं। अगर समाज में आप परिवार में रह रहे हैं तो आपकी भावना ही सर्वोपरि है, यह एक प्रकार से भावनात्मक तानाशाही है। राजेन्द्र यादव-मन्नू भंडारी प्रकरण में मन्नू जी ने शायद पहली बार अपना पक्ष और सच्चाई सामने रखी है। जिसको देखकर तो यही लगता है कि यादव जी की प्रवृत्ति अपने को आगे रखने की और थोपने की है। इससे ज्यादा मैं यादव जी के बारे में नहीं कहना चाहूँगा। मैंने उनके वैचारिक धरातल को लेकर दो लेख लिखे थे जो 'आधार शिला' में प्रकाशित हुए थे। उसके अलावा उनको लेकर मेरे पास कुछ कहने को नहीं है।

एक आखिरी सवाल, भारतीय समाज में साहित्य को लेकर आप कितना आश्वस्त हैं?

यद्यपि दूरदर्शन तथा मनोरंजन के अन्य साधनों के आ जाने से साहित्य पर थोड़ा बहुत प्रभाव जरूर पड़ा है, पर मैं साहित्य के भविष्य को लेकर पूर्ण आश्वस्त हूँ, आशावान हूँ। थोड़ी कमोवेशी तो चलती रहती है। उतार-चढ़ाव कहाँ नहीं आते? पर चुनौतियाँ आती हैं, तो रास्ते भी निकलते हैं। साहित्य को पाठक नहीं मिलेंगे और वह समाप्त हो जायेगा, ऐसा मैं नहीं मानता।

'एक पते पर'- विभूतियों से पत्र

रमेश दवे

रमेश चन्द्र शाह हमारे समय के सर्वाधिक अध्ययनशील, चिन्तनशील और चेतनावान ऐसे सर्जक हैं जिनकी विद्वता का लोहा उनके तथाकथित विरोधी तक न केवल मानते हैं बल्कि उनसे टकराने का नैतिक-साहस भी नहीं दिखा पाते। हिन्दी साहित्य में शाह एकमात्र ऐसे लेखक हैं जिन्होंने साहित्य की लगभग सभी विधाओं एवं अनौपचारिक विधाओं(जीवनी या आत्मकथा को छोड़कर) में सृजन किया है। अज्ञेय, गोविन्द चन्द्र पाण्डे, विधानिवास मिश्र, निर्मल वर्मा और हाल ही दिवंगत हुए कुँवरनारायण के बाद हिन्दी की समूची सृजन-भूमि को समृद्ध करने वाला कोई लेखक हमारे बीच है तो वह रमेशचन्द्र शाह ही है। (चाहे इससे कुछ असहमत लोग अतिशयोक्ति ही क्यों न मानें)

शाह की अभी-अभी प्रकाशित पुस्तक 'एक पते पर' शाह के नाम लिखे गए पत्रों का संग्रह है। आज जब कि पत्र-विधा भी साहित्य की महत्वपूर्ण विधा के रूप में स्थापित है, ऐसे में ये पत्र केवल पत्र नहीं बल्कि शाह से विभूतियों का आत्मीय और साहित्यिक संवाद है। साहित्य में संवाद के भी अनेक तरीके हैं- एक तो आमने-सामने की चर्चा, दूसरा साक्षात्कार और तीसरा पत्राचार। पत्र-संवाद पत्र-लेखक और पत्रों में संबोधितों का दर्पण होता है। पत्र यदि रुचिकर हैं,और पठनीय-शैली में है, तो न केवल पूरा-पत्र बल्कि उसका अंत के बाद का 'पुनश्च' तक भी महत्वपूर्ण और ध्यातव्य होता जाता है। यह शाह की संग्रह-वृत्ति की खूबी है कि उन्होंने समकाल के लगभग हर उस विभूति के अधिकांश पत्र सुरक्षित रखे हैं जो आज के सन्दर्भ में साहित्यिक-संवाद की इतिहास-वस्तु कहला सकते हैं। मेरी भी एक वृत्ति यह है कि मैं जब किसी पुस्तक, पत्रिका, अखबार आदि में कोई अच्छा उद्धरण पढ़ता हूँ तो अपनी नोटबुक में नोट कर लेता हूँ। शाह के पत्रों को पढ़कर मुझे दो तीन उद्धरण मिले जिन्हें शाह के पत्रों के सन्दर्भ में देना अनुपयुक्त नहीं होगा।

अट्ठारहवीं सदी के स्त्रीवादी लेखक एबिगैल एडम्स ने कहा था- पत्र लेखन एक ऐसी आदत है जिसका आनंद पत्र लिखते रहने से बढ़ता है और जब पत्र लिखना छूट जाता है या उसकी उपेक्षा कर दी जाती है तो वह अनुभव बड़ा कष्टदायक होता है।

शाह की पुस्तक में बीस विभूतियों द्वारा शाह को लिखे गए पत्रों का संग्रह है। कई पत्रों की मूल विचार एवं अनुभव सामग्री तो मुख्य भाग में है, मगर 'पुनश्च' की दो-तीन पंक्तियाँ भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। 'पुनश्च' को लेकर फ्रांसिस बेकन ने पत्र-लेखक के सम्बन्ध में अपने निबंधों की पुस्तक 'ऑफ कनिंग' मे कहा था-

''जब वह पत्र लिखता है तो सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात मूल पत्र के
बजाय 'पुनश्च' में ही लिखता है, शायद उसे लगता है कि
पुनश्च ही मूलपत्र की उप-सामग्री है।''

शाह को लिखे गए पत्रों में यद्यपि 'पुनश्च' तो कम हैं लेकिन जो हैं मूल-सामग्री के सार-तत्व हैं। चार्ल्स लेम्ब के पत्रों को लेकर हेजलिट ने लिखा था- ''लेम्ब जो कुछ लिखता है वह सामान्यतः ऐसा है जैसे स्त्रियों से संवाद कर रहा हो लेकिन सारे पत्र का लुब्बे-लुबाब या सार तो उसके 'पुनश्च' में ही होता है।'' इन उद्धरणों को देने का तात्पर्य शाह को लिखे गए पत्रों के 'पुनश्च' को एक शैली की तरह प्रस्तुत करना है, बल्कि यह प्रकट करना है कि कई बार विचार, अनुभव या जानकारी का कोई तत्व यदि शेष रह जाता है तो उसे 'पुनश्च' में लिख दिया जाए। इसके विपरीत यह भी विशेष उल्लेखनीय है कि

पुस्तक : एक पते पर (रमेशचन्द्र शाह के
नाम हिन्दी की विभूतियों के पत्र)
संग्रह कर्त्ता - रमेशचन्द्र शाह (कवि, कथाकार, आलोचक)
प्रकाशक - पहले पहल प्रकाशन (भोपाल)
मूल्य - रू 250/-

साहित्यिक-पत्र या विभूतियों द्वारा लिखे गए पत्रों में लेखक की जो गति होती है, उस गति में कई बार कुछ महत्वपूर्ण तथ्य छूट जाता है जिसे 'पुनश्च' में देकर पत्र को पूर्णता प्रदान की जाती है। यह ध्यानाकर्षण का भी तरीका है। आजकल तो यह एक पत्रकारिता शैली भी बन गई है। राजदीप सरदेसाई अपने हर राजनीतिक या सामयिक लेख में एक 'पुनश्च' अवश्य देते हैं जो पठनीय होता है। अस्तु

अब 'एक पते पर' पुस्तक को लेकर कुछ विचार किया जाए। यदि अपने समय का कोई भी महत्वपूर्ण लेखक शाह को पत्र लिखता है तो यह तो साबित होता है कि शाह भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। उन्हें लिखे गए कई पत्र तब से ही उनके पास आते रहे जब शाह पर्याप्त युवा थे अर्थात पैंतीसेक वर्ष के होंगे। यदि एक युवा लेखक के ज्ञान और सृजन का इतना प्रभाव था कि अज्ञेय, मुक्तिबोध, जैनेन्द्र, श्रीपत राय, विधानिवास जी से लेकर मलयज, अशोक वाजपेयी तक उन्हें न केवल पत्र लिखते रहे हों बल्कि उन्हें अपने साथ रह कर संवाद करने के लिए आमंत्रित करते रहे हों तो लगता है शाह की छाप समकाल की विभूतियों पर कितनी गहरी रही होगी।

'एक पते पर' के समस्त पत्र एक पते पर इसलिए हैं कि वे केवल शाह को उनके ही व्यक्तिगत पते पर लिखे गए हैं। सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' से लेकर सुप्रसिद्ध दार्शनिक एवं समाजवादी चिन्तक कृष्णनाथ तक के ये सभी पत्र अपनी विषय-सामग्री में मात्र 'अत्र कुशलम् तत्रास्तु' की औपचारिकता में न लिखे जाकर विमर्शात्मक भी हैं। इनमे शाह के लेखन विशेष रूप से उनके उपन्यासों पर चर्चा है और 'गोबरगणेश' के रचनाकाल से लेकर 'किस्सा गुलाम', 'पुनर्वास' इन तीन उपन्यासों का विशेष उल्लेख है। शाह के इन उपन्यासों पर जब अज्ञेय, निर्मल वर्मा, जैनेन्द्र, श्रीलाल शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी और अशोक सेकसरिया जैसे उद्भट लेखक विस्तृत टिप्पणी करते हैं और उनके सृजन की उत्कृष्टता बताते हुए उसे पढ़ने की उत्सुकता प्रकट करते हैं तो लगता है कि शाह इन सर्जकों के साथ समकक्ष व्यक्तित्व की तरह खड़े हैं। शाह की कविताओं को लेकर अज्ञेय तो प्रसन्न-अभिमत देते ही हैं लेकिन अन्य पत्र-लेखक भी उनकी काव्य-प्रतिभा को स्वीकार करते हैं। इसी प्रकार उनकी कहानियों को जहाँ श्रीपत राय (प्रेमचंद के सुपुत्र) पसंद कर अपनी पत्रिका 'कहानी' में अनवरत छापते हैं तो लगता है शाह ने कथा-लेखन में भी अपने युवाकाल में ही अपना वर्चस्व स्थापित कर दिया था।

अज्ञेय शाह को 'नया प्रतीक' में लेखन के लिए न केवल उकसाते हैं बल्कि अपने सौजन्य-मण्डल में भी शामिल करते हैं। जैनेन्द्र शाह के 'किस्सागुलाम' उपन्यास से अभिभूत हैं तो अशोक वाजपेयी उन्हें भाई सम्बोधन के साथ अपने पदांकन स्थान अम्बिकापुर के लिए आमंत्रित करते हैं साथ ही ज्ञानरंजन की शाह पर की गई टिप्पणियों को यह कह कर नजरअंदाज करने की सलाह देते है कि यह ज्ञानरंजन का द्वेष न होकर उनका आपकी

विद्वत्ता से भय है। अशोक सेकसरिया तो शाह के उपन्यासों का विश्लेषण ही अपने पत्रों में इस प्रकार करते हैं जैसे एक समालोचक अत्यन्त निर्भावुक समीक्षा कर रहा हो। इसी प्रकार श्रीलाल शुक्ल भी शाह से औपचारिक कम लेकिन उनके कथा साहित्य को ही लेकर पत्रों में लम्बी चर्चा करते हैं। पुस्तक में अज्ञेय, अशोक सेकसरिया, नामवरसिंह, मलयज, श्रीलाल शुक्ल, अशोक वाजपेयी, यशदेव शल्य, जड़ावलाल मेहता, कृष्ण बलदेव वैद, रघुवीर सहाय, मुकुन्द लाठ, कृष्ण नाथ आदि के लम्बे, विचारात्मक, समीक्षात्मक एवं अनेक प्रकार के व्यक्तिगत और रचना-संदर्भो से जुड़े ऐसे पत्र हैं जिन्हें म्दहूहू-ग्म्प कहा जा सकता है और उनका सारांश भी दे पाना कठिन है। विद्यानिवास जी के पत्र तो बहुत हैं, संक्षिप्त भी हैं लेकिन वे अधिकतर औपचारिक ही हैं। जैनेन्द्र जी और हजारी प्रसाद जी के पत्र शाह की सृजनात्मक-क्षमता और प्रतिभा के स्वीकार के पत्र हैं जो शाह जैसे युवा कथाकार के लिए भावी प्रेरणा के स्त्रोत बने। दयाकृष्ण दार्शनिक चिन्तक है और अंग्रेजी में ही शाह से बौद्धिक विमर्श करते हैं। नामवर सिंह जी विशेषता से उल्लेखनीय हैं इसलिए कि वे शाह की अध्ययन, ज्ञान और सृजन को विचारधारा-निरपेक्ष हो कर देखते हैं।

अज्ञेय अपने 25.11.1980 के पत्र में शाह का महत्व इस प्रकार स्वीकारते हैं- ''आपके पत्रों का उत्तर देने में प्रायः चूक हो जाती है, जो स्वयं मेरे कारण और भी अधिक आश्चर्य की बात है कि आप उन थोड़े से लोगों में ही हैं जिनके साथ मैं लगातार संवाद की स्थिति में रहना चाहता हूँ। अज्ञेय जी के शाह को लिखे लगभग तीस पत्र इस संग्रह में हैं जिनमें 'रमेश जी, प्रियवर, जनाब शाह साहब'' जैसे संबोधन हैं और पत्रों के अंत में अज्ञेय न लगभग तीनेक बार पुनश्च का भी प्रयोग किया है। जैनेन्द्र जी के संग्रह में केवल दो पत्र हैं। वे शाह के उपन्यास 'किस्सा गुलाम' को लेकर लिखते हैं- ''तुम्हारा नया उपन्यास 'किस्सा गुलाम' रुचिपूर्वक आद्यंत पढ़गया। कई प्रसंगों पर ऑसू रोकना मुश्किल हो गया।'' निर्मल वर्मा अपने 04.02.1979 के पत्र में लिखते हैं- मुझे 'गोबर गणेश' बहुत पसंद आया। मैंने वर्ष के श्रेष्ठ उपन्यासों में 'नवभारत टाइम्ज' के एक इन्टरव्यू में उसका उल्लेख भी किया था। ''सुना है कि अच्छे समीक्षक अच्छे कवि तो बन सकते हैं, अच्छे उपन्यासकार नहीं- आपने इस उपन्यास के द्वारा इस साहित्यिक भ्रान्ति को तोड़ा है।'' निर्मल जी के दस पत्रों में शाह के अनेक विधाओं से जुड़े पहलू हैं और शाह की विद्वत्ता का भी जिक्र है। पुनश्च का प्रयोग मात्र एक बार ही है।

शाह मलयज के साथ विशेष आत्मीय रहे हैं। मलयज के पत्रों का एक संग्रह ''रंग अभी गीले हैं'' प्रकाशित हो चुका था लेकिन शाह अन्य महत्वपूर्ण व्यक्तित्वों के साथ मलयज को भी रखना चाहते थे- शायद इसलिए उनके भी पाँच पत्र दिए गए हैं साथ ही दो पत्र स्वयं शााह के भी मलयज के नाम हैं जिन्हें यहाँ न देकर कुछ अन्य लेखकों के पत्रों के साथ शाह अपने पत्र 'परिशिष्ट' बना कर दे सकते थे। पं. विद्यानिवास मिश्र के अपेक्षाकृत छोटे और औपचारिक किस्म के लगभग 30 पत्र संग्रहीत हैं। विद्यानिवास जी अपने 04.01.1999 के पत्र में लिखते हैं- ''आप मेरी बात समझ सकते हैं क्योंकि आप भी मेरी तरह हिन्दी के अध्यापक नहीं रहे और मेरी ही तरह हिन्दी के बीच बाहरी आदमी हैं। हम लोगों का सरोकार जीवन का सरोकार है।''

'राग दरबारी' के प्रसिद्ध उपन्यासकार एवं व्यंग्यकार श्रीलाल शुक्ल अपने चार पत्रों के माध्यम से शाह के उपन्यासों की पत्र समीक्षा तो कर ही रहे हैं साथ ही निबंधों के बारे में कह रहे हैं- ''शैतान के बहाने' दिल्ली से लौटने के बाद पढ़लिया था और उसी के साथ 'आडू का पेड़' भी पहले पलटा भर था... अब मेरा इकबालिया जुर्म सुनें-आपके निबंधों को मैने न पढ़ने या अनवधान भावसे पढ़ने की मूढ़ता करके आपके साथ जो ज्यादती की है उससे कहीं बड़ी ज्यादती खुद अपने साथ की। इन निबंधों की कोटि ही अनूठी है।''

अशोक सेकसरिया एक अधीत विद्वान् के साथ समाजवादी विचारक रहे हैं और लोहिया, किशन पटनायक, सच्चिदानंद सिन्हा आदि के साथ उनका जीवन संघर्ष रहा है। अशोक जी ने शाह के उपन्यासों की अपनी आत्मीयता से परे जाकर समीक्षा करते हुए उनके कमजोर पक्ष को भी उजागर किया है। ''किस्सा गुलाम'' पर तो उनका लम्बा समीक्षात्मक पत्र तो है ही, साथ ही हरिजन या दलित को लेकर स्वयं अपना भी अभिप्राय है। अशोक जी के ये लगभग 7-8 पत्र हैं। वे शाह के उपन्यास 'पुनर्वास' पर भी टिप्पणी करते हैं। 'पूर्वा पर' लिखते हुए अशोक जी कहते हैं ''.... मुझे हर क्षण लगता था अब रमेश जी उसे बिगाड़ना शुरू करेंगे- क्योंकि वह एकदम सटीक और ससटेण्ड चल रहा था। रमेश जी को आदत है कि वह अतिरेक में या ओवर राइटिंग से बिगाड़ते हैं पर 'पूर्वा पर' कहीं भी आपकी आदत हावी नहीं हुई।''नामवर सिंह हमारे समय के सर्वाधिक विदग्ध एवं प्रत्युत्पन्न मति आलोचक एवं विचारक हैं। शाह को लिखे लगभग 9-10 पत्रों में से उनके निबंध को लेकर अपने 09.12.68 के पत्र मे नामवरजी लिखते हैं- .... आपका निबंध पढ़गया। निबंध इतना विचारोत्तेजक और स्फूर्तिप्रद था कि लम्बाई का अहसास ही नहीं हुआ। 'लेचल मुझे भुलावा देकर' शीर्षक गीत की व्याख्या इस निबंध की उपलब्धि है। प्रसाद, निराला और पंत की 'लहर' संबंधी कविताओं का तुलनात्मक विश्लेषण आलोकप्रद है।

एक कवि प्रशासक की साहित्यिक संवेदना क्या हो सकती है यह अशोक वाजपेयी के पत्रों में पढ़ी जा सकती है। ज्ञानरंजन के एक पत्र को लेकर अशोक जी लिखते हैं- ''ज्ञानरंजन के पोस्ट कार्ड की भबकी से मुझे हैरत हुई। उनकी इस अकारण और उग्र आक्रामकता का आधार समझ में नहीं आया। ... इस पूरे वर्ग में आपसे नाराजी का मुख्य कारण 'नया प्रतीक' से आपका संबंध है। ..... आपकी बौद्धिक क्षमता और शक्ति है जिससे अनेक लोगों को भय लगता है। अशोक जी ने शाह साहब को अपने परिवारगत भाई की तरह संबोधित किया है एक प्राध्यापक-लेखक के प्रति एक प्रशासक-लेखक का यह सम्मानजक भाव साहित्यिक शील की तटस्थ अभिव्यक्ति कही जा सकती है।

श्रीपत राय को शाह ने सदैव 'काका' से संबोधित किया है- इसलिए श्रीपत जी ने अपने को काका मान लेते हुए शाह की कहानियों से प्रभावित होकर अपनी पत्रिका 'कहानी' में उन्हें आग्रहपूर्वक आमंत्रित किया है। 'कस्बे में कविता और अंगीठी, कोयला और राख मुझे दोनों (कहानियाँ) ही अच्छी लगी। तुम्हारे प्रति यह मेरा मोह भी हो सकता है..... 'विकल्प' में तुम्हारा लेख बहुत अच्छा था..... तुम्हारी मेधा का प्रशंसक हूँ ..... उपन्यास क्या पूरा कर लिया! कहानी-संग्रह प्रेस में दे दिया है..... भूमिका भी लिख दूँगा। (23.2.76)

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के दो पत्र हैं जिनमें से एक में वे कहते हैं मैं आपके वैदुष्य का बहुत सम्मान करता हूँ। और दूसरे में गरूढ़पुराण एवं श्राद्ध धर्म को लेकर कुछ असहमति के बावजूद लोकाचार का आदर है। यशदेव शल्य तो शाह के पारिवारिक सदस्य की तरह हैं। 'काव्यालोचन' से लेखन प्रारंभ कर वे दर्शन में गए और हिन्दी को दर्शन की नई भाषा दी। उनके पत्रों में बेवाक चुटीलापन है और गोविन्द्रचन्द्र पाण्डे के व्याख्यानों के प्रति अपनी स्पष्ट राय के साथ वे कहते हैं व्याख्यान में शाब्दिकता अधिक है। शल्य जी की भाषा में हयूमर और विट है। मदन सोनी ने शाह के उपन्यास 'पुनर्वास' को लेकर वे कहते हैं.... मैंने उसे लिखा था कि 'पुनर्वास' पर उसके मत से सहमत नहीं

हूँ।... हाँ इन लोगों के हीरो श्री वागीश शुक्ल का बहुत बढ़िया निरूपण मुकुन्द जी ने किया..... कहा - '' वे कुछ 'खिलंदरी-सी करते हैं एक अरबी का कोई जुमला लिया, एक फारसी का, एक संस्कृत का और एक फ्रेंच का, कुछ कौतुक रचा, बस लेख हो गया। शल्य ने कविता, दर्शन और शाह के संग्रह नदी भागती आई और अन्य लेखों पर भी बड़ी आत्मीय लेकिन आनंदभाव से चुटकी भरी टिप्पणियाँ भी की हैं।

मुकुन्द लाठ तो भाषा, संगीत, कलाएँ, इतिहास, पुरातत्व, वाड्.मय और साहित्य के अप्रतिम विद्वान हैं। वे जब भी लिखते हैं, डूब कर गहराई के साथ विस्तार से लिखते हैं। शाह साहब को लिखे एक पत्र में रामू गांधी (रामचन्द्र गांधी) को लेकर इनकी इस बात से पता चलता है कि एक कला साधक, एक दार्शनिक और शाह जैसे साहित्यकार के साथ अपने विचार से कैसे एकाकार होता है। वे कहते हैं-

'रामू गांधी की 'आई एम दाड' पर आपका रिव्यू पढ़ा। रामू गांधी दर्शन में भी काव्य जैसी ध्वनि ला देने में सिद्ध हस्त हैं, विलक्षण प्रतिभा है।'' ..... आपने कहा भी है कि रामू गांधी का अद्वैत तत्व दर्शनिक का अद्वैत नहीं, एक दृष्टि विशेष का अद्वैत है दर्शन में उसे कुछ भी नाम दिया जा सकता है। आपने एक वाक्य का बार बार उद्धरण किया है। कुछ उलझा हुआ सा वाक्य है, रामू गांधी ऐसे वाक्यों में भी मजा लेते हैं। हमको अपने पर, अपने कल्चर पर, अपने चिन्तन पर भरोसा नहीं रहा है, यही कह रहे हैं, और सच कह रहे हैं, जैसे हेगेल की बोली उधार ले ली हो।'' मुकुन्द लाठ को एक बड़े सांस्कृतिक फलक पर रख कर कला, इतिहास और संस्कृति की ही भाषा में पढ़ना होगा। शाह को लिखे इन पत्रों में मुकुन्द लाठ के मानस को पढ़ा और समझा जा सकता है। जड़ावलाल मेहता ऐसे दार्शनिक हैं जिनसे शाह उसी प्रकार प्रभावित हैं जिस प्रकार शल्य जी से हैं। मेहता, रामू गांधी और शल्य ये तीन शाह की दार्शनिक प्रज्ञा को उसी प्रकार परिचालित करते हैं जिस प्रकार श्री अरविन्द, निसर्गदत्त और अनिर्वाण उनके ध्यान चिन्तन के मानस को प्रभावित करते हैं। संस्कृति को लेकर मेहता जी अपने पत्र में कहते हैं- '' संस्कृति कोई ऐसी खीच नहीं है जिसकी ऐतिहासिकता से हम सदा जकड़े रहें। वह ग्राह भी है और गजेन्द्र-मोक्ष की संभावना भी उसी में है।'' शाह के समालोचक से प्रभावित होकर मेहता जी कहते हैं- ''आपका लेख पढ़गया, दो बार, तीन बार। पढ़ते समय मेरा एटीट्यूड यह था कि किसी की लिखी हुई किसी पुस्तक पर आपका समालोचनात्मक लेख पढ़रहा हूँ। बड़ा सुन्दर लिखा है, पैनी दृष्टि से, अन्दर डूब कर''। पत्रों में प्रकट मंतव्यों से स्पष्ट है कि शाह के सम्पर्क में जो भी लेखक, कवि, कथाकार, दार्शनिक आए उन्होंने शाह पर कहीं भी आत्म केन्द्रित होने का आरोप न लगाकर उनकी मेधा को, उनकी प्रतिभा को ही स्वीकारा है।

कृष्ण बलदेव वैद एक ऐसे कथाकार हैं जो आपकी बात निर्मम और निर्भावुक ढंग से कहते हैं। वे शाह के अधिक उद्धरणों की प्रवृत्ति को 'नामगिराऊ' नेमड़ापिंग जैसे शब्द से थोड़ा नापसंद तो करते हैं मगर शाह की प्रतिभा से प्रभावित हैं और उनके उपन्यास को लेकर कहते हैं- ''आप कहीं नहीं रहते विभूति बापू''.....का खण्डित विन्यास शिल्प की दृष्टि से इसे विशिष्टता देता है..... आपका यह उपन्यास आपके दूसरे उपन्यासों से अलग महसूस हुआ। हर लिहाज से तो नहीं, अपने मूल स्वर में और अपनी मूल संवेदना और वेदना, मै जरूर 'गोबर गणेश' के पहले हिस्से की धुँधली धुंधली याद आती रही।'' कृष्ण बलदेव वैद की राय शाह के उपन्यासों को लेकर इसलिए महत्वपूर्ण है कि उनके जैसा कथाकार जो विश्व साहित्य का गहन अध्येता है और अपनी बेबाकी के लिए जाना जाता है वह जब शाह की मेधा को मानता है तो निश्चित ही इससे शाह का कथाकार रूप बड़ा हो जाता है।

रघुवीर सहाय समाजवादी आस्था के एक शीलवान प्रबुद्ध कवि, कथाकार, पत्रकार हैं। वे शाह से प्रभावित होकर लिखते हैं- ''आजकल पहले की अपेक्षा कहीं अधिक आप जैसे सहृदयों की लम्बी चिट्ठियाँ शक्ति देती हैं।'' 'सप्तक' परम्परा के कवियों में अज्ञेय के बाद सर्वाधिक सांस्कृतिक उन्मेष के बहु-अनुशासनों के अध्येता कुंवरनारायण दिग्गज के रूप में जाने जाते हैं। जब शाह के बारे उनके विचार पढ़ते हैं तो लगता है शाह के परिचय का आत्मीय-फलक कितना व्यापक है। वे अपने एक लेख को लेकर लिखते हैं- ''आपने मुक्तिबोध पर मेरे लेख को इतनी रूचि और गहराई से पढ़ा यह मेरे लिए संतोष की बात है। साहित्य को एक चिन्तक की सावधानी से पढ़ने वाले गिने चुने लोगों में मै आपको मानता हूँ।''

इस संग्रह में अंतिम पत्र अर्थशास्त्री दार्शनिक और समाजवादी बौद्ध चेतना के अनुगामी कृष्णनाथ का एक पत्र है जो औपचारिक ''और लद्दाख में विश्वविद्यालय की चर्चा करता है लेकिन इससे शाह के प्रति कृष्णनाथ की आत्मीयता प्रकट होती है। दयाकृष्ण शाह को उसी प्रकार प्रिय हैं जिस प्रकार दार्शनिकों में शल्य जी, जड़ावलाल मेहता और रामूगाँधी हैं। दयाकृष्ण जी से शाह के पूरे परिवार का घरेलूपन रहा है। दयाजी ने सारे पत्र अंग्रेजी में लिखे हैं। दयाजी तो शाह की अनुवाद-प्रतिभा से प्रभावित होकर लिखते हैं - ''मेरे लेख का आपके द्वारा किये गये अनुवाद को अच्छा पाठक प्रतिसाद मिला है- मैं चकित हो रहा हूँ कि यह कौशल अनुवादक का है या एक विचारक के विचार का जादू है। इसे तो शल्य जी ने भी पसंद किया है।''

शाह के पत्रों का यह संग्रह याद दिला देता है काफ्का के पिता को लिखे गए पत्रों की, वॉनगाग के भाई को लिखे पत्रों की और प्रूस्त के अपनी माँ और भाई को लिखे पत्रों की। शाह को लिखे गए पत्रों की विशेषता यह है कि इनमें अपनत्व की अनौपचारिकता से अधिक साहित्यिक चर्चा है जो पत्र को विधात्मक बनाती है। पत्र-विधा के रूप में एक बहुत ही सशक्त साहित्यिक हस्तक्षेप है। जो बात जीवनी, डायरी, संस्मरण में उतनी संलग्नता से नहीं कही जा सकती वह दो लोगों के पत्राचार में केवल बात न रह कर अगर साहित्य बन जाती है तो पत्र लेखक और पत्र-पाठक या पत्र में संबोधित दोनों की सर्जनात्मकता का एक नया आयाम साहित्यिक विधाओं को मिलता है। इन पत्रों को पढ़ना एक प्रकार से लेखकों से जीवंत एवं जीवित संवाद जैसा है और इसलिए हिन्दी साहित्य को अपनी उपस्थिति से अधिक सम्पन्न और विचारशील बनाते हैं। एक बात अवश्य चुभती है कि इन पत्रों में स्व. वीरेन्द्र कुमार जैन का एक भी पत्र नहीं है। क्या ऐसा संभव है कि वीरेन्द्र जी ने कोई पत्र न लिखा हो ? इसी प्रकार विदुषी कपिला वात्स्यायन, इला डालमिया, आदि से भी शाह का सम्पर्क रहा है। अगर उनके पत्र नहीं हैं तो यह शाह सा. की तो गलती नहीं है - मगर अगर लिखे होते और संग्रह में भी आ जाते तो स्त्री पत्र-लेखकों को भी पढ़ने का अवसर मिलता। स

संपर्क : एस.एच. 19, ब्लॉक-8,
सहयाद्रि परिसर, भदभदा रोड, भोपाल(म.प्र.)
फोन-0755-2777048 मो. 94065 23071
rameshdave12@rediffmail.com

सामाजिक सरोकारों की गहराई से पड़ताल करती व्यंग्य रचनाएँ

सूर्यकान्त नागर

भ्रष्टाचार का सैनिक (व्यंग्य-संग्रह)
लेखक - प्रेम जनमेजय
प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-2
मूल्य : 350 रूपये

प्रेम जनमेजय न केवल एक दृष्टि-सम्पन्न व्यंग्यकार हैं, बल्कि व्यंग्य विधा के संवर्धन के उतने ही बड़े पैरोकार भी हैं। वे लेखन से ही नहीं, अपनी विविध साहित्यिक गतिविधियों से भी, व्यंग्य विधा को प्रमोट करने के महत्वपूर्ण काम में संलग्न हैं- चाहे वह गाष्ठियों, सेमिनारों, कार्यशालाओं के आयोजनों में भागीदारी के द्वारा हो या फिर व्यंग्य-यात्रा जैसी पत्रिका के संपादन के माध्यम से। यहीं नहीं, वे नए व्यंग्यकारों को मंच देकर उनका भी उत्साह-वर्धन करते हैं। ऐसे समय में जबकि कई रचनाकार अपनी ढपली, अपना राग अलापा करते हैं, पर-हित की यह भावना निःसंदेह श्लाघनीय है।

ऐसे समर्पित व्यंग्यकार की नवीनतम कृति है 'भ्रष्टाचार के सैनिक'। इसमें विविध विषयों पर लिखे उनके इकतालीस व्यंग्य निबंध संग्रहित हैं। वस्तुतः ये विरोधाभासी स्थितियों के प्रति एक संवेदनशील व्यक्ति की प्रतिक्रियाएँ हैं, जिन्हें एक बड़े वर्ग के साथ बाँटने की उसकी बेचैनी को सहज ही रेखांकित किया जा सकता है। उद्देश्य है कंकड फेंक ठहरे जल में लहरें पैदा करना, ठहरे पारे को थरथराना। वस्तुतः यह उन विरोधी स्थितियों को समाप्त करने की दिशा में ऐसा प्रयास है जो सुसंगत समाज-रचना में बाधक है। यह एक किस्म की विचार-यात्रा है। यदि रचनाएँ मारक हैं तो इसका यह अर्थ नहीं कि वे हथोड़े की तरह प्रहार करती हैं। बरअक्स वे लाल चींटी के काटने-सी तिलमिलाहट पैदा करती हैं। उस टिंचर आयोडिन की तरह हैं जो जलन भी पैदा करता है और उपचार भी। प्रेम जनमेजय जानते हैं कि अराजक होने पर व्यंग्य प्रभावहीन हो जाता है। उनके व्यंग्य व्यक्तिगत राग-द्वैष से मुक्त हैं। वे व्यक्ति पर नहीं, वृत्ति पर चोट करते हैं। उनमें सत्य को पकड़ने की जबरदस्त क्षमता है। उनके लिए व्यंग्य-लेखन एक सामाजिक प्रयोजन है। संग्रह की प्रथम रचना 'बर्फ का पानी' वर्ग वैषम्य की मर्मस्पर्शी रचना है जो सुविधा भोगियों के समक्ष दो निर्धन, उपेक्षित, प्यासे बालकों की इच्छाओं-अपेक्षाओं पर होते तुषारापात को शिद्दत से व्यक्त करती है। 'मोची भया उदास' बाजारवाद, बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ, नई उपभोक्ता संस्कृति, इंटरनेट, लेपटॉप, फेसबुक, इन्स्टाग्राम, गूगल आदि की वजह से नई पीढ़ी में आ रहे बदलावों और उनकी असंवेदनशीलता की बारीकी से पड़ताल करती है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों और कॉरपोरेट सेक्टर्स की जानलेवा नौकरियाँ श्रम को सेवा का नाम देकर वर्कर्स का जमकर शोषण करती हैं। 'भ्रष्टाचारियों के असली रूप को प्रगट करती रचना है 'भ्रष्टाचार के सैनिक'। ये महारथी ऐसे-ऐसे करतब करते हैं कि उन्हें देख कपड़े पहनने वाले भी लजा जाएँ। 'चिंकारा होने की आजादी' में एक तीर से अनेक निशाने साधे गए है। एक ओर आम आदमी को न्याय प्राप्ति में होने वाले विलंब पर तंज कसा गया है तो दूसरी ओर जाति, धर्म, समुदाय में विभाजित समाज की विसंगत प्रवृत्तियों को उजागर किया गया है तथा बताया गया है कि कथित 'हित-चिंतक' के लिए पीड़ितों को न्याय दिलाने का पैमाना, धर्म-सम्प्रदाय आधारित है। समाज में विभिन्न वर्ग के लोग 'किसम-किसम' के चेहरे चिपकाए हुए हैं। ये मुखौटे उनके लिए रक्षा-कवच का काम करते हैं। इन कवच की आड़ में वे अपना हित साधते हैं। कभी धर्म का चौला ओढ़कर, कभी महानता का, कभी अज्ञानता का और कभी झूठ का। कुछ साहित्यकार भी इस फन में माहिर हैं (सुरक्षा कवच महाठगिनी हम जानी)। समकालीनता के प्रति लेखक के जज्बे को 'कबीर, मैं क्यों भया उदास' में देखा जा सकता है। किसानों की दयनीय दुरावस्था की ओर संकेत करते हुए कहा गया कि जो उत्पादन करता है, वह आत्महत्या कर रहा है और जो उनका माल बेचता है, उसकी चारों उंगलियाँ घी में और सिर कढ़ाई में है। आजकल देश में दो तरह की सफाई का बोलबाला है। एक, जिसमें नेता को पता है कि किस पर हाथ साफ करना है और कैसे करना है। दूसरा, स्वच्छ भारत का सफाई अभियान जिसमें नेता-राजनेता पहले से ही साफ जगह पर झाड़ू फेरने का नाटक करते हुए फोटो खिंचवाते हैं जो टीवी और समाचार-पत्रों में वायरल हो जाते हैं। हिन्दी की दुर्दशा पर दो व्यंग्य हैं- 'अहिंसक हिन्दी' और 'हिन्दी का मारग'। इनमें अंग्रेजी के बढ़ते प्रभाव, भ्रष्ट होती हिन्दी, नागरी लिपि और रोमन लिपि तथा हिन्दी के प्रचार-प्रसार के नाम पर गोवर्धन पूजा की तरह हर वर्ष मनाए जाने वाले हिन्दी दिवस, हिन्दी माह की रोचक टीका की गई है। स्वीकृत बजट के अनुसार ही सरकारी दफ्तरों में सप्ताह के आयोजन किए जाते हैं और उनकी सचित्र रपट केन्द्रीय कार्यालय को भेजकर कर्तव्य की इतिश्री मान ली जाती है।आजकल चरण छूने की प्रवृत्ति खूल फल-फूल रही है। चरण छुआने वाला भी जानता है कि पहले अपनी एहमियत जताना जरूरी है। छूने वाला भी जानता है कि बिना उनके चरण छूऐ उद्धार नहीं होगा। इसलिए अब सार्वजनिक रूप से चरण चूमने वालों को भी शर्म नहीं आती। चापलूसों को भ्रष्ट लोगों के चरण छूते तनिक तज्जा नहीं आती। कई बार तो ऐसे लोगों के चरण स्पर्श करना पड़ते हैं जो वस्तुतः उसके योग्य नहीं। इस विषय पर परसाईजी का एक मारक व्यंग्य है 'विकलांग श्रद्धा का दौर'। इसमें वे अपने अंदाज में तंज कसते हैं - 'फिर श्रद्धा का यह कोई दौर है देश में ? जैसा वातावरण है, उसमें किसी को भी किसी के प्रति श्रद्धा रखने में संकोच होगा। ..... यह चरण छूने का मौसम नहीं, लात मारने का मौसम है।' मेरे मत में 'विचार' के स्तर पर प्रेम जनमेजय यहाँ परसाईजी की सोच के निकट हैं। आजकल आधुनिक तकनीक का उपयोग न कर पुरानेपन पर अटके रहने वाले को 'पोंगापंथी' कहा जाता है। स्मार्टफोन, इंटरनेट, फेसबुक, इन्स्टाग्राम आदि का उपयोग न करने वाला वज्र मूर्ख है, सर्वधा अप्रासंगिक व्यक्ति।प्रेम जनमेजय समसामयिक परिवेश की गहरी छानबीन करते हुए आज के महत्वपूर्ण मुद्दों, प्रश्नों और समस्याओं से मुठभेड़ करते हैं। नोटबंदी से हुई गरीबों की त्रासदी की प्रभावी प्रस्तुति है 'रूदालियाँ'। कतार में खड़े व्यक्ति के दर्द को न समझते हुए घड़ियाली आंसू बहाने वालों की कमी नहीं है। चिकनगुनिया रोग के प्रकोप से आज भी कई नगर प्रांत के लोग आक्रांत हैं। इसको लेकर कच्चा चिट्ठा खोला गया है रचना 'आह चिकनगुनिया में। सन्नाटा टूट रहा है, मेढ़कों का आकाश, गांधारी युग की उत्तर कथा, दुर्योधन के वंशज अन्य उल्लेखनीय रचनाएँ है। प्रेम जनमेजय समाजिक सरोकारों में गहराई से उतरने वाले सृजनधर्मी हैं। शायद ही कोई समकालीन समस्या उनकी जद से बाहर रही हो। उनकी पक्षधरता स्पष्ट है। जीवन-मूल्यों के प्रति उनकी आस्था को उनके व्यंग्य में परिलक्षित किया जा सकता है। सहज-सी लगती अभिव्यक्ति में बहुत गहराई हैं। वैसे सही अर्थ में सहज होना बहुत कठिन है। उनकी सीधी रेखाओं के पीछे जो वक्रता है, वही उनकी ताकत है। लेकिन उनका वक्रीय आक्रोश सात्विक और ईमानदार है। सृजानात्मक क्षमता के अभाव में व्यंग्य अपशब्द लग सकता है। प्रेमजी का विश्वास भाषायी दांव-पेच या जादूगरी में नहीं है। ऐसा वे करते हैं, जिनके पास ठोस कथ्य नहीं होता। दरअसल, प्रेमजी के रचनात्मक विश्लेषण से उनकी रचनाओं के सौंदर्य का बोध होता है। यह सौंदर्य बोध भी उनकी रचनाओं को पढ़े जाने हेतु उत्प्रेरक का काम करता है। स

81, बैराठी कालोनी नं. 2, इन्दौर-452014 (म.प्र.)
मो.नं. 098938-10050

ताज़ा दौर की राजनीति के पर्दे के पीछे की कहानी

मनीष वैद्य

सब कहते हैं कि राजनीति कीचड़ की तरह होती जा रही है, लेकिन जब तक इसमें अच्छे लोग नहीं जाएंगे, तब तक इसकी शुचिता पर कैसे बात की जा सकती है। देश की दशा और दिशा बदलनी है तो ईमानदार, कर्तव्यनिष्ठ और राष्ट्रहित में सोचने वाली युवा शक्ति को उठ खड़ा होना पड़ेगा। इसी विषय को छूता है कथाकार ज्योति जैन का पहला और ताज़ा उपन्यास 'पार्थ...तुम्हें जीना होगा!'

यह उपन्यास एक आदर्शवान युवा नेता की कहानी कहते हुए हमें अनायास मौजूदा राजनीति के ऐसे देखे अनदेखे अँधेरे-उजाले पक्ष को हमारे सामने लाता है कि अंत तक आते-आते हम भी उन किरदारों से जुड़ने लगते हैं। हिन्दी उपन्यासों में राजनीति पर कम ही रचनाएँ मिलती हैं, उनमें भी ज्यादातर राजनीति का सिर्फ़ काला सच ही बयान करती है, लेकिन यहाँ लेखिका ने काले और उजले दोनों ही पक्षों के साथ न्याय किया है। आज़ादी से पहले तक हमारे देश की राजनीति देश सेवा के जज़्बे और मिशन की तरह रही। नेता निस्वार्थ भाव से लोगों की सेवा करने की भावना से आते थे। इन सत्तर सालों में हम दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र तो बन गए लेकिन सेवा, मिशन और जज्बे जैसी बात अब महज थोड़े से नेताओं को छोड़कर कहीं नजर नहीं आती। यहाँ तक कि वे अपने निहित स्वार्थों और प्रतिद्वंद्वियों को अपने रास्ते से हटाने के लिए किसी को जान से मारने से भी गुरेज नहीं करते। पतन होते हुए राजनीति आज कहाँ आ पहुँची है?

लेखिकाएँ अमूमन ऐसे विषयों से परहेज करती है, लेकिन यहाँ लेखिका ने अपने कम्फर्ट झोन से बाहर निकलकर पहले उपन्यास का यह विषय चुना। उपन्यास पढ़ने के बाद लगता है कि उनका यह 'रिस्क' सफल भी हुआ। दूसरी बात, उनका उपन्यास तक का सफर लघुकथाओं और कहानियों की विधा से आवाजाही करते हुए यहाँ तक आया है, लेकिन उपन्यास की भाषा को भी उन्होंने साधा है। सहज-सरल और आमफ़हम शब्दों के साथ उपन्यास इतने प्रवाह से चलता है कि पाठक कहीं रुकता नहीं। कहीं-कहीं उर्दू और अंग्रेजी के साथ स्थानीय मालवी बोली के 'नवाई' और 'बखत' जैसे शब्द भी आते हैं। वहीं इंदौर, झाबुआ, देवास और भोपाल का उल्लेख इसे स्थानीय स्पर्श देता है। आवरण पहली ही नज़र में आकर्षित करता है।

उपन्यास की संवाद योजना सुगठित है तथा कहीं भी संवादों में बासीपन

पार्थ...तुम्हें जीना होगा! (उपन्यास)
लेखिका : ज्योति जैन
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर (मप्र)
मूल्य- 175 रुपये

या उबाऊपन नहीं लगता है। छोटे-छोटे वाक्यों में सटीक संवाद किसी नाटक की-सी अनुभूति कराते हैं। ट्रेन यात्रा में सहयात्रियों के संवाद हो या जनार्दन बाबू से आरक्षण के मुद्दे पर विचारोत्तेजक बहस; संवाद सहज बन पड़े हैं। मुख्य पात्र अर्जुन है, जिसे अन्य किरदार पार्थ, गांडीवधारी और धनंजय भी कहते हैं। कहानी पूरे समय इसी के आसपास घूमते हुए भी जनार्दन, अशोक, नीरजा, पृथा और अनुराधा की भी कहानी और मनोभाव कहती चलती है। अधिकांश पात्र और कथानक की स्थितियाँ महाभारत के कुरुक्षेत्र की स्मृति से हैं, राजनीति भी तो इन दिनों कुरुक्षेत्र में ही तब्दील हो चुकी है। यथा- 'नहीं अर्जुन! तुम्हें कुछ नहीं होगा। तुम्हारे जैसे योद्धा चले गए तो इस राजनीति की महाभारत के कुरुक्षेत्र का क्या होगा?...ये वह कुरुक्षेत्र नहीं है अर्जुन, जो अठारह दिन बाद शवों से पट वीरान हो जाएगा। ये राजनीति का कुरुक्षेत्र है, जहाँ दुर्योधन, दुःशासन जैसे कौरवों के उत्तराधिकारी रक्त बीज की तरह पुनः पुनः उठ खड़े होंगे। उनके विरुद्ध...इस भ्रष्ट सिस्टम के विरुद्ध....तुम्हें भी अपने समान कई-कई अर्जुन, धनंजय, गांडीवधारी खड़े करने होंगे।'

आमुख में वरिष्ठ कथाकार पंकज सुबीर ने लेखिका के बारे में लिखा है- 'अपने पहले ही उपन्यास में राजनीति को विषय के रूप में चुनना एक साहस का कार्य तो है...वे विषय और पात्रों के चुनाव में बहुत सजगता बरतती हैं। उनके पात्र बहुत सुगठित और सुस्पष्ट होते हैं। यह बात इसे पढ़ते हुए लगातार सही भी लगती है। कुल मिलाकर पहले ही उपन्यास में लेखिका आश्वस्त करती हैं और उम्मीद भी जगाती हैं कि अगली कृतियाँ इससे आगे की होंगी। स

मुकर्जी कॉलोनी, देवास (म.प्र.)
मो.नं.9826013806

युवा लघुकथाकारों के लिए विशेष स्तम्भ
- घरौंदे -

समावर्तन को विशिष्टतम मासिक पत्रिका बनाये रखने के लिए इसमें हर माह कई स्तम्भ नियमित रूप से शृंखलाबद्ध प्रकाशित होते हैं जिसकी प्रतीक्षा पाठकों को रहती है। इस शृंखला में युवा लघुकथाकारों के लिए एक नए स्तम्भ 'घरौंदे' की शुरूआत की जा रही है। जिसमें प्रतिमाह किसी एक युवा लघुकथाकार (अधिकतम आयु 45 वर्ष) की दस-बारह लघुकथाएं प्रकाशित की जाएगी। **इस स्तम्भ की सम्पादक होगी श्रीमती वाणी (दवे) शर्मा।** युवा लघुकथाकारों से आग्रह है कि वे अपनी 15 लघुकथाएं डाक से अथवा ई-मेल से अपना संक्षिप्त परिचय एवं फोटोग्राफ सहित निम्नलिखित पते पर **टंकित (कृतिदेव फोन्ट 010 में)** रूप में भेजें। चयनित लघुकथाओं पर 'घरौंदे' की विशेष सम्पादक अपनी सम्पादकीय टिप्पणी भी हर अंक में प्रस्तुत करेगी। 'घरौंदे' हेतु रचनाएं निम्नानुसार पते पर डाक से भेजी जा सकती है।

श्रीमती वाणी (दवे) शर्मा
द्वारा श्री अंकित शर्मा 17/1 नाथ राज मोहल्ला, इन्दौर म.प्र. 452001 ई-मेल :samavartan@yahoo.com

हरीश कुमार सिंह के व्यंग्य साहित्य में निहित कटूक्तियाँ

बीना चौधरी

व्यंग्य का जन्म अपने समय की विद्रूपताओं के भीतर से उपजे असंतोष से होता है। विद्वानों में इस बात पर मतभेद लगतार बना रहा है कि व्यंग्य को एक अलग विधा माना जाए या कि वह किसी भी विधा के भीतर चैतन्य रूप में मौजूद रहता है। दरअसल व्यंग्य एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा व्यंग्यकार जीवन की विसंगतियों, खोखलेपन और पाखंड को दुनिया के सामने उजागर करता है। इन स्थितियों से हम परिचित तो होते हैं, किन्तु उनके बीच जीने की, समझौते की आदत बना लेते हैं। व्यंग्यकार अपनी रचनाओं में ऐसे पात्रों और स्थितियों का संयोजन करता है, जिससे पाठक सचेत हो जाए। व्यंग्य सीधे हृदय पर वार करता है।

हिन्दी में संत साहित्य से व्यंग्य का प्रारम्भ माना जा सकता है। कबीर व्यंग्य के आदि प्रणेता माने जाते हैं, साथ ही सूर के भ्रमरगीत में भी व्यंग्य अद्भुत रूप में मिलता है। तुलसी में भी व्यंग्य की फुहार दृष्टिगोचर होती है, किन्तु कबीर के व्यंग्य समाज की विसंगतियों पर प्रहार करते हैं। कबीर के बाद भारतेन्दु ने सामाजिक विषमताओं के प्रति व्यंग्य को हथियार बनाया। भारतेन्दु युग में ही, बालमुकुन्द गुप्त के शिवशंभु के चिठ्ठे, व्यंग्यमाला के तीव्र व्यंग्य सुप्रसिद्ध है ही। इस युग में प्रतापनारायण मिश्र व बद्रीनारायण चौधरी प्रेमधन के साहित्य में भी व्यंग्य का पुट विद्यमान है।

युगीन समस्याओं पर व्यंग्य करने की प्रवृत्ति प्रेमचंद व निराला (कुकुरमुत्ता) में भी मिलती है। पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र रांगेय राघव आदि की रचनाओं में भी कमोबेश व्यंग्यात्मकता विद्यमान है।

स्वतंत्रता पूर्व तक व्यंग्य स्वतंत्र विधा न होकर अन्य साहित्यिक विधाओं में बिखरे रूप में परिलक्षित होता है। परन्तु स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में व्यंग्य का स्वतंत्र रूप में पर्याप्त सृजन हुआ है। निरन्तर बढ़ती सामाजिक विषमताओं से विक्षुब्द होकर व्यंग्यपूर्ण लेखन की एक लम्बी परम्परा मिलती है।

हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल एवं रवीन्द्रनाथ त्यागी ने व्यंग्य परम्परा को नया क्षितिज प्रदान किया है। समकालीन परिदृश्य में भी व्यंग्य का लगातार सृजन हो रहा है। श्री नरेन्द्र कोहली, प्रेम जनमेजय, हरीश नवल, ज्ञान चतुर्वेदी, अशोक शुक्ल अश्विनी कुमार दुबे, शंकर पुणतांबेकर, गिरीश पंकज आदि ने व्यंग्य विधा को ऊंचाइयॉ दी है। इनके साथ ही आलोक पुराणिक, सुशील सिद्धार्थ, सुभाषचन्दर, ब्रजेश कानूनगो, पीयूष पाण्डे, निर्मल गुप्त, अशोक मिश्र, अलंकार रस्तोगी, के.के. अस्थाना, मुकेश जोशी, रमेशचंद्र शर्मा, देवेन्द्रसिंह सिसोदिया डॉ. शिव शर्मा, डॉ.पिलकेन्द्र अरोरा और हरीश कुमार सिंह आदि अपने लेखन से व्यंग्य साहित्य को परिपुष्ट कर रहे हैं। कोई दो राय नहीं कि इन लेखकों की महती लेखनी ने व्यंग्य को साहित्य की एक स्वतंत्र विधा के रूप में सम्मानजनक स्थान का अधिकारी बनाया है।

हरीशजी के व्यंग्य जीवन के कटु-तिक्त अनुभवों के कोष है। समाज, साहित्य, शिक्षा, न्याय-व्यवस्था, जनता की निद्रावस्था और राजनीति की संकीर्ण बदबूदार गलियॉ - ये सब विचलित करती है इन्हें और ये कलम उठाने को मजबूर हो जाते हैं। कलम उठती है तो व्यंग्य का धारदार पैनापन अपने आप आकर उपस्थित हो जाता है। जब विद्रूपताएँ और विसंगतियॉ बहुत हो और आम जनता समझौतावादी हो चुकी हो, तो लेखक की छटपटाहट व्यक्त हो ही जाती है। आम आदमी की परेशानियों के साथ ही राजनीति के छल-छद्म को व्यक्त करते हुए हरीशजी शोषण के तिलिस्म पर प्रकाश डालते हैं। इनके

हरीश कुमार सिंह : चुनिंदा व्यंग्य
संपादक : रमेश तिवारी
गीतिका प्रकाशन, बिजनौर उ.प्र.
मूल्य - 300 रूपये

व्यंग्य भीतर तक उतरते हैं और हर पंक्ति पढ़ने पर लगता है कि हॉ ऐसा ही तो होता है, या हो रहा है। अपने आसपास के माहौल में से सब अनकहे यथार्थ लेखक के शब्दों में चिन्हित व चिरपरिचित प्रतीत होते हैं।

हरीशजी व्यंग्य के माध्यम से सृजन और संहार दोनों करते हैं। आपने अपनी सजग दृष्टि से परिस्थितयों का अवलोकन कर, उसकी गहराई में जाकर उन्हें अनुभूत किया है और इन अनुभूतियों को कहीं व्यक्तिशः और कहीं निर्वेयक्तिक व्यंग्य की नोंक पर उकेरा है।

सबसे अहम बात यह है कि भाषा भी इनके कथ्य का अनुसरण करती चलती है। मंजी हुई भाषा-शैली, जिसमें विशिष्ट शब्द-संयोजन निहित है, यह आपकी विशेषता है। व्यंग्य को उभारने के लिये कहीं-कहीं ऐसी व्यंजनात्मक शब्दावली का प्रयोग है, जो सीधे पाठक के हृदय का संस्पर्श कर कभी गुदगुदाता है, जो कभी तिलमिलाता है- प्रतियोगी-प्रेमी, बयानवीर, टिकट-जुगाड़, साहित्य के मठाधीश आदि ऐसे ही शब्द हैं।

'वेलेंटाइन डे का अपना एक अलग सिलेबस हैं', जैसे वाक्यों का अपना अलग ही प्रभाव होता है।

जिस प्रकार साहित्य की अन्य विधाओं में सूक्तियॉ होती है, उसी प्रकार व्यंग्य में भी होती हैं, जिन्हें कटूक्तियॉ कह सकते हैं। ये सूक्तियां रूपी कटूक्तियॉ या व्यंग्योक्तियॉ, जो हरीशजी के जीवन के अनुभवों का निचोड़ हैं, जिसे उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक स्थितियों की केंचुल फाड़कर उघाड़ा है; बहुत मार्मिक हैं और सीधे चोट करती हैं। 'हरीशकुमार सिंह के चुनिंदा व्यंग्य' पुस्तक में निहित व्यंग्य की बौछार से स्नात कटूक्तियॉ बहुत हैं, उनमें से कुछ इस प्रकार है -

0 अफसर के साथ 'अफसर-कल्चर' का चलन भी बढ़ा है। **0** कवियों के सबसे बड़े दुश्मन कवि ही होते हैं। **0** एक बरसात ऐसी भी है, जो पॉच वर्ष में एक बार होती है। **0** सब मेंढकों का लक्ष्य एक ही रहता है कि येन केन प्रकारेण राजनीति के तालाब में अपना साम्राज्य स्थापित करना। **0** आकाओं के सामने कार्यकर्ताओं को अपना दिमाग इस्तेमाल न करने पर आम सहमति है। **0** जितना बड़ा अपराधी होता है, पुलिस को उसे गिरफ्तार करने में उतना ही ज्यादा समय लगता है। **0** राजनीति अपराधियों का, गुण्डों का आश्रय स्थल, ऐशगाह है। **0** राजनीति में धर्म, धर्म नहीं, अफीम है, राजनीतिज्ञों का एंटीबायोटिक है। **0** राज्यपाल केन्द्र की कठपुतली और उसका आलीशान नौकर है। **0** देश में ईमानदार वही बचा है, जिसको बईमानी का अवसर अभी तक नहीं मिला है। **0** नई संस्कृति में घूस, रिश्वत लेना या देना अपराध नहीं है, बल्कि घूस लेकर, रिश्वत खाकर काम न करना अपराध है। **0** प्रशासन तो आजकल अफसरों पर कम पार्टी कार्यकर्ताओं की बुनियाद पर ज्यादा चल रहा है। **0** यही प्रजातंत्र है, जिसमें सबको बराबर चरने का अवसर मिलता है। **0** राजनीति में पदार्पण का अर्थ सिद्धान्तों को तिलांजलि देना और काजल की कोठरी में प्रवेश करना है। **0** सिद्धान्त और सत्ता दो विपरीत ध्रुव हैं। **0**

राजनीति और साहित्य ऐसे क्षेत्र हैं, जिनमें जोड़-तोड़ के बगैर पत्ता तक नहीं हिलता। **0** प्यार और युद्ध के अलावा वर्तमान में राजनीति भी इसमें जुड़ गई है, जिसमें सब माफ है। **0** पिछले कुछ समय से देश शालीन संस्कृति से श्वान-संस्कृति की ओर अग्रसर होता दिखाई दे रहा है। **0** राजनीति में मंत्रीपद का टुकड़ा डालने से दुम हिलती नजर आती है। **0** व्यर्थ के दॉव-पेचों की बजाय मूर्ख बनकर जी-हुजूरी करना ज्यादा सुखमय है। **0** उस समय पुलिस वालों के दिल पर क्या गुजरती होगी, जब उनके तबादले वे करने लगें, जिन्हें पुलिस कभी जिलाबदर किया करती थी। **0** आम चुनाव के समय चिंतन जनहित का चिंतन नहीं बल्कि स्वहित का चिंतन है। **0** कल तक जो पोटा में बंद थे, अब मंत्री बनकर कानून का सोटा घुमा रहे हैं। **0** देश में रोजगार के अवसर लगातार कम हो रहे हैं मगर केन्द्र और राज्यों में मंत्रियों की संख्या लगातार बढ़रही है। **0** दो जून की रोटी को तरसते आवाम वाले देश में वे कई निःशुल्क हवाई यात्राओं, टेलीफोन-गैस कनेक्शनों, आलीशान बंगलों के हकदार हैं। **0** जब सच बोलने के लिये करोड़ों रूपये जा रहे हों, तो सच का सामना करने में डर कैसा **0** इस देश की राजनीति, कार्यपालिका व सेवा-क्षेत्र में भ्रष्टाचार खून की तरह रगों में दौड़ रहा है। **0** राजनेता स्वयं एक-दूसरे के विरूद्ध बयानबाजी कर अपनी बिरादरी की असलियत और असली औकात जनता को बता देते हैं। **0** आजकल जब से चौबीस घंटों के न्यूज चैनल आ गए हैं तथा उन्हें अपने गाल लगातार बजाने हैं, तो उन्हें भी बयानवीरों का ही सहारा रहता है। **0** जिस तरह नगें, दंगे और भिखमंगे राष्ट्र की पहचान हैं, उसी तरह बागी और दागी राजनीति की धरोहर है। **0** हो सकता है कल को बजट में कभी भ्रष्टाचार को सार्वजनिक मान्यता प्रदान करने के लिये करप्शन टैक्स लगा दिया जाए। **0** संयुक्त राष्ट्र संघ की सातवीं अधिकारिक भाषा मुझे बनाने की वकालात करने वालों से निवेदन है कि पहले अपने देश में तो मुझे राष्ट्रभाषा बनवा दें (मैं हिन्दी बोल रही हूँ) **0** राजनीति में शिखर पर पहुँचने के लिये ज्ञानमार्गी के बजाय भक्तिमार्गी होना जरूरी है **0** अब राजनीति की दशा और दिशा सिर्फ कुर्सी, कमीशन और कमीनेपन तक रह गई है।**0** कोई भी एक बार कुर्सी से चिपकने के बाद कुर्सी के साथ ही स्वर्ग जाना चाहता है। **0** आपके (सत्ता पक्ष) साथ चलना और हॉ में हॉ मिलाना देश भक्ति है और आपके विचारों, नीतियों की आलोचना राष्ट्रदोह है। **0** आजकल तो यह फैशल चल पड़ा है कि यदि किसी ने आपको आज कुछ गलत करते रंगे हाथों पकड़ लिया है, तो आप अपनी गलती मानने के बजाय पकड़ने वाले को ही उसके भी पुराने कुकर्मो का हवाला देकर बचने की कोशिश करते हैं। (गड़े मुर्दों में दफन होते मुद्दे, शीर्षक भी व्यंग्योक्ति ही है) **0** असल में वाट्सएप नशे की एक ऐसी बीमारी है, जो स्मेकचियों और अफीमचियों को भी मात देती है। **0** अब साहित्य सरकार का दर्पण है को हमें अनिवार्य रूप से मान्यता देनी होगी। **0** राजनीति का स्तर गिर रहा है या स्तरहीन महानुभाव राजनीति में भविष्य देख रहे हैं। **0** वर्तमान में ज्वलंत मुद्दे दलों की जरूरत के हिसाब से बदल रहे हैं। **0** राजनीति के हमाम में सब बदरंग होने के बाद भी अपने आपको जनहितैषी और देशभक्त बताने में लगे हैं। **0** विज्ञान के युग में अंधविश्वासी शक्तियॉ भारी पड़ रही है। **0** धर्म निरपेक्ष संविधान वाले देश में जाति, धर्म देखकर तिलक लगाया जा रहा है। **0** चमचावाद के समय में भक्तिमार्गी ज्ञानमार्गियों पर भारी है। **0** विकास तो हो रहा है। मगर उल्टी दिशा में, यह जानना जरूरी है। **0** समाजसेवी नेताओं के लिये मुख्य धंधा तो राजनीति ही है, जो धर्म की सीढ़ी के सहारे परवान चढ़सकता है, तो प्रवचनकार के लिये धर्म का धंधा प्रमुख है, जो समाजसेवी राजनेताओं के सहयोग से पनप सकता है। समग्रतः हरीशजी ने सामाजिक और राजनीतिक विद्रूपताओं के घने कुहासे में व्यंग्य की तीखी रोशनी डाली है, जिससे अंधकार रूपी यथार्थ की परतें उजागर हुई है। दो टूक शैली में परत दर परत अंधकार को चीरते हुए राह सुझाने की अद्भुत कोशिश है। व्यंग्य के इस प्रकाश में समझौतावादी आम जनता को अपनी राह खोजनी ही होगी। वस्तुतः ये राष्ट्रीय चेतना के व्यंग्य हैं क्योंकि इनके चिंतन में राष्ट्र की समस्याएँ हैं। मेरा सुझाव है कि इन व्यंग्य रचनाओं का प्रचार-प्रसार हो और उसके लिये एक तरीका भी प्रस्तुत है कि जैसे मंचीय कविता होती है, वैसे ही मंचीय व्यंग्य कार्यक्रम भी हो, ताकि जनता प्रगाढ़निद्रा से जागे। स

प्राध्यापक- हिन्दी
श्री सीताराम जाजू शासकीय कन्या
स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.)

पुस्तकें मिलीं

यह मुकाम कुछ और (दोहा संग्रह)
कुँअर उदयसिंह 'अनुज'
सुभद्रा पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स दिल्ली-94
मूल्य - रू.200/-

पिरामिड में हम (कविता संग्रह)
सुरेन्द्र रघुवंशी
अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद 201005
मूल्य - रू.250/-

कोहरे में सुबह (कविता संग्रह)
ब्रजेश कानूनगो
बोधि प्रकाशन, जयपुर-302006
मूल्य- रू.120/-

कथा मध्यप्रदेश (कुल छःखण्ड)
अविभाजीत मध्यप्रदेश के
कथाकारों पर केन्द्रित कथाकोष
प्रकाशक - विश्व कला एवं
संस्कृति केन्द्र आईसेक्ट विश्वविद्यालय
भोपाल एवं
डॉ.सी.बी.रमन विश्वविद्यालय बिलासपुर
प्रत्येक खण्ड का मूल्य- रू 800/-

गुड़ की भेली (मालवी लेख)
नंदकिशोर चौहान
प्रकाशक- मालवी जाजम, इन्दौर
मूल्य - रू.125/-

व्यंग्य प्रदेश
(मध्यप्रदेश के रचनाकारों का संग्रह)
संपादक - पिलकेन्द्र अरोरा
प्रकाशक - अंतरा इन्फोमिडिया.कॉम
मूल्य - रू.160/-

Mukti Kothaya
Whither salvation
(A Trilogy of poetic play
Prabhatkumar Bhattacharya
Translated in to English from
original hindi by Ratan chouhan
Publisher - Authors Press
New Delhi-110016
Price - Ru.1400/-

दासू वैद्य को दिया सर्वोच्च सम्मान

इन्दौर। शहर की प्रतिष्ठित संस्था आपले वाचनालय के संस्थापक वसंत राशिनकर की स्मृति में प्रतिवर्ष आयोजित होने वाले अ.भा. सम्मान समारोह का गरिमापूर्ण आयोजन गत दिनों आपले वाचनालय सभागृह में किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे वरिष्ठ साहित्यकार चंद्रसेन विराट एवं मुख्य अतिथि मराठी साहित्य अकादमी के निदेशक अश्विन खरे ने कहा कि कवि, मूर्तिकार व समाजसेवी वसंत राशिनकर द्वारा समाज में रचनात्मकता के अभ्युदय के लिए स्थापित आपले वाचनालय वह संस्था है जिसने सांस्कृतिक क्षेत्र में जो योगदान दिया है वह अतुलनीय एवं शब्दातीत है। सम्मान समारोह में महाराष्ट्र के चर्चित कवि दासू वैद्य को कविवर्य वसंत राशिनकर स्मृति अ.भा. सम्मान से सम्मानित किया गया। आपले वाचनालय और श्री सर्वोत्तम के संयुक्त तत्वावधान में दिया जाने वाला वसंत काव्य साधना अ.भा. सम्मान जालना की रेखा बैजल, गोआ की सुनेत्रा कलंगुटकर, नांदेड की वसुंधरा सूत्रावे, भोपाल की अलका रिसबुड और इन्दौर की जयश्री करजगी को दिया गया। तबला वादन व कविता के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान के लिए मनीष खरगोणकर को अच्युत पोतदार प्रदत्त रामू भैया दाते स्मृति सम्मान से सम्मानित किया गया। उत्तरार्ध में दासू वैद्य की अध्यक्षता में प्रभावी मराठी कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया। इस काव्य यात्रा में अरुण खरगोनकर, अर्चना शेवड़े, मनीष खरगोनकर, सुषमा अवधूत, वैशाली पिंगले, वसुधा गाडगीळ, मेधा खीरे, चेतन फडनिस एवं राधिक इंगले ने अपनी कविताओं से श्रोताओं को अभिभूत किया। दासू वैद्य और चंद्रसेन विराट ने अपनी रचनाओं से समा बांध दिया। कवि सम्मेलन का सुचारू संचालन आभा निवसरकर ने किया। अतिथियों का स्वागत अरविन्द डिके, किशोर पाटिल, प्रदीप मिश्र, शशिकांत ताम्बे एवं संदीप राशिनकर ने किया। कार्यक्रम का सुचारू संचालन श्रीति राशिनकर ने किया एवं आभार माना विश्वनाथ शिरढोणकर ने। कार्यक्रम में मराठी हिन्दी श्रोताओं की बड़ी उपस्थिति में सदाशिव कौतुक, राज केसरवानी, प्रभु त्रिवेदी, राजनिरमन शर्मा, देवेन्द्र रिणवा सहित अनेक साहित्य प्रेमी उपस्थित थे।

अभिरंग द्वारा संगोष्ठी का आयोजन

दिल्ली। स्वतंत्रता के बाद हिन्दी के पहले बड़े नाटककार जगदीशचंद्र माथुर की जन्म शताब्दी पर साहित्य अकादमी के सहयोग से हिन्दू कॉलेज में आयोजित संगोष्ठी में नाटककार दयाप्रकाश सिन्हा ने कहा कि माथुर अग्रगामी नाटककार थे। जहाँ पृथ्वीराज कपूर हिन्दी रंगमंच का निर्माण कर रहे थे वहीं माथुर ने हिन्दी को पहली बार अपने मिजाज के नाटक दिए। प्राचार्य अंजू श्रीवास्तव ने अतिथियों का स्वागत किया। सम्पादक अनुपम तिवारी ने

अतिथियों का परिचय दिया। संगोष्ठी का बीज वक्तव्य दे रहे प्रसिद्ध नाटककार नरेंद्र मोहन ने कहा कि माथुर स्वतंत्र भारत के पहले बड़े नाटककार ही नहीं पहले रंगकर्मी भी थे जिन्होंने हिन्दी नाटक के लिए समर्थ नाटक लिखे। लेखक प्रताप सहगल और माथुर के पुत्र ललित माथुर ने भी संगोष्ठी में भाग लिया।

'कादम्बरी' जबलपुर द्वारा सदाशिव कौतुक सम्मानित

समावर्तन के प्रबन्ध सम्पादक तथा अनेक विधाओं के रचनाकार सदाशिव कौतुक को उनकी चर्चित 48वीं कृति 'ज़िन्दगी के अक्स' को स्व.रामेन्द्र तिवारी समग्र लेखन सम्मान संस्था कादम्बरी द्वारा गत दिनों शहीद स्मारक भवन जबलपुर में रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय के कुलपति कपिलदेव मिश्र, गार्गीशरण मिश्र 'मराल', आचार्य भगवत दुबे एवं राजकुमार तिवारी 'सुमित्र' द्वारा प्रतीक चिह्न, शॉल, सम्मान पत्र एवं पाँच हजार सम्मान राशि प्रदान कर सम्मानित किया गया। इस समारोह में नौ प्रदेशों से आए वरिष्ठ साहित्यकारों को भी सम्मानित किया गया।

डॉ.सुमित्र का सम्मान

जबलपुर। साहित्यकार पत्रकार पाथेय कला अकादमी के संस्थापक

राजकुमार 'सुमित्र' को उनके साहित्य सृजन, चिन्तन एवं प्रकाशन के लिये 'परिचय साहित्य परिषद नई दिल्ली द्वारा सृजन शिखर अलंकरण से हिन्दी भवन नई दिल्ली में सम्मानित किया गया। सम्मान स्वरूप शॉल, श्रीफल अलंकरण एवं 51 हजार रुपये की राशि प्रदान की गई। दिल्ली से प्रकाशित मासिक 'प्राची पत्रिका' ने डॉ.सुमित्र के व्यक्तित्व-कृतित्व पर विशेषांक प्रकाशित किया। समारोह में डॉ.सुमित्र के दोहासंग्रह 'यादें बनी लिबास' का विमोचन भी हुआ। आयोजन के मुख्य अतिथि पूर्व शिक्षामंत्री उ.प्र. के डॉ.रवीन्द्र शुक्ल थे। अध्यक्षता वरिष्ठ साहित्यकार सर्वेश चंदोसी ने की। इस अवसर पर दिल्ली झांसी, गाजियाबाद, एटा, आगरा से बड़ी संख्या में साहित्यकार उपस्थित थे। आभार डॉ.भावना प्रेम शुक्ला ने व्यक्त किया।

प्रस्तुति-राजेश पाठक 'प्रवीण'

शरद पगारे को लाइफ टाइम अचिवमेंट सम्मान

उदयपुर। गत दिनों उदयपुर, राजस्थान के राजस्थानी साहित्य अकादेमी के हॉल में सृजन गाथा डाट काम रायपुर एवं राजस्थानी साहित्य अकादेमी उदयपुर ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन के ग्यारहवें अधिवंशन के अवसर पर देशभर से आए साहित्यकारों एवं उदयपुर के साहित्यकारों की उपस्थिति में शरद पगारे को लाइफ टाइम अचिवमेंट के सम्मान से अलंकृत किया गया। उनके अगस्त 2017 में प्रकाशित उपन्यास 'ज़िन्दगी के बदलते रुख पर' 11 हजार रुपये प्रदान किये गये।

प्रस्तुति - सूर्यकांत नागर

क्षितिज द्वारा लघुकथा संगोष्ठी

इन्दौर। समकालीन महिला लघुकथा लेखन पर 'क्षितिज' संस्था इन्दौर द्वारा लघुकथा संगोष्ठी का आयोजन किया गया। अध्यक्षता डॉ.पद्मासिंह ने की। कार्यक्रम की मुख्य अतिथि श्रीमती संतोष श्रीवास्तव (भोपाल) थी। इस प्रसंग पर क्षितिज द्वारा सतीश राठी के संपादन में प्रकाशित पत्रिका के श्रद्धांजलि अंक का लोकार्पण भी किया गया। दीपा व्यास, वसुधा गाडगिल, ज्योति जैन, आशा वडनेरे, कविता वर्मा, ममता तिवारी, मीना पांडेय, सुधा चौहान, मंजुला भूतड़ा, गरिमा दुबे, रश्मी वागले, शारदा गुप्ता, विनीता शर्मा, पुष्पारानी गर्ग, चेतना भाटी, अंतरा करवडे, कुसुम सोगानी द्वारा लघुकथाओं का पाठ किया गया। अखिलेश शर्मा द्वारा संस्था का परिचय दिया गया। अशोक शर्मा 'भारती' एवं सुरेश बजाज द्वारा अतिथियों को स्मृति चिह्न भेंट किये गये। कार्यक्रम का संचालन अंतरा करवड़े द्वारा किया गया, एवं आभार विनीता शर्मा के द्वारा माना गया।

प्रस्तुति - क्षितिज, इन्दौर

श्रद्धांजलि : सुनीता जैन

अपने साहित्य के मार्फत सुनीता जैन

छबिल कुमार मेहेर

हिन्दी साहित्य की अप्रतिम उपलब्धि सुनीता जैन हमारे बीच नहीं रहीं। 11 दिसम्बर, 2017 को उनका देहावसान हो गया। वे हमारे समय की सबसे सक्रिय एवं गतिशील रचनाकार थीं। सतत एवं सार्थक सृजन की दृष्टि से वे हिन्दी एवं अंग्रेजी दोनों भाषाओं में पूर्णाधिकार रखने वाली अप्रतिम कवि-कथाकार-अनुसर्जक थीं। उनके विविधवर्णी सृजन-संसार को देखकर सुखद आश्चर्य होता है। बिना किसी राग-द्वेष के, बिना किसी वाद-विवाद के, बिना किसी राजनीति के निस्पृह और निश्छल भाव से पिछले पाँच दशकों से निरन्तर सृजनशील रहीं। 14 खण्डों में विस्तारित 'सुनीता जैन समग्र' इस बात का प्रमाण है कि लेखन के प्रति वे कितनी सजग और किस हद तक सक्रिय हैं। उनके रचना-संसार का वैभव देखकर चकित रह जाना पड़ता है। उनके नाम 52 काव्य-संग्रह, 4 कहानी-संग्रह, 6 उपन्यास तथा कई अनूदित कृतियाँ दर्ज हैं जो संख्या की दृष्टि से जितना चकिताती हैं, उससे कहीं ज्यादा विषय-वैविध्य के लिहाज से। इस दृष्टि से उनके सृजन-संसार से गुजरना एक सुखद अनुभूति से गुजरने जैसा है।

सुनीता जैन एक प्रतिबद्ध सर्जक थीं। उनकी प्रतिबद्धता किसी गुट या किसी विचारधारा के प्रति न होकर मनुष्यता के प्रति थी और इसी के समान्तर सार्थक सृजन के प्रति। 'इससे यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि वे लेखन का आधार केवल भावनाओं को बनाती थीं, विचार को नहीं। असल में वे आस-पास के जीवन को जितना महसूस करती थीं, उतना ही उस पर सोचती भी थीं।... अच्छी-बुरी जैसी, जब वह हो।' आखिर सुनीता जी लिखती कैसे थीं ' उत्तर है-- सुनीता ऐसे लिखती थीं जैसे पात्रों और पाठकों से संवाद कर रही हों। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि 'वे मानस की तमाम जटिलताओं को रचना के माध्यम से सुलझाती हैं और प्राणवान और सहजात निसर्ग से साक्षात्कार कराती है। यानी सुनीता जी विचारधारा, अध्यात्म या दर्शन का सहारा लेकर अपनी उथलपुथल को नहीं सहेजतीं, वे रचना के माध्यम से उससे उलझती और उसी के माध्यम से उसे सुलझाती ।''

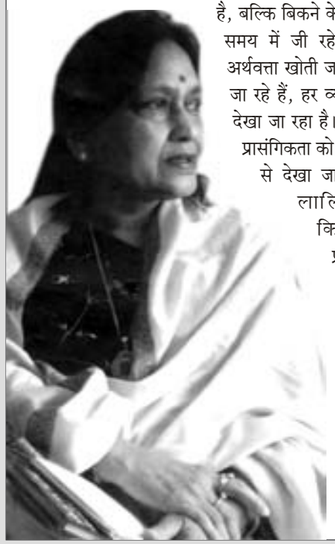

बहरहाल, हम एक ऐसे निरर्थक समय में जी रहे हैं जहाँ हर चीज बिकाऊ है, बल्कि बिकने के लिए आतुर हैं। ऐसे कठिन समय में जी रहे हैं जहाँ हर चीज अपनी अर्थवत्ता खोती जा रही है, मूल्य खोखले होते जा रहे हैं, हर व्यक्ति को सन्देह की दृष्टि से देखा जा रहा है। और साहित्य ' साहित्य की प्रासंगिकता को भी इस वक्त सन्देह की दृष्टि से देखा जा रहा है। इधर निबन्धों से लालित्य, उपन्यासों से किस्सागोई, नाटकों से प्रदर्शनीयता, कहानियों से आकर्षण और कविता से अनुभूति लुप्त होती जा रही है। बकौल कृष्ण कुमार इधर कहानियों में कहानीपन और कविताओं से सगापन समाप्त होता जा रहा है, इसीलिए कविताएँ उद्धरणीयता खोती जा रही है। किन्तु सुनीता जैन की अधिकतर कविताओं में उद्धरणीयता की प्रवृत्ति बरकरार है। रमेश दवे के शब्द उधार लेकर कहें तो उनके शब्दों में अपनत्व और अन्यत्व एक साथ ध्वनित होते हैं। वे ऊपरी तौर पर विराग की कवयित्री लगती हैं लेकिन वे आन्तरिक राग की रस-सिक्त व्याकुलता की कवयित्री हैं।

संगति, संघर्ष, संस्कार, संकल्प और संवेदन-- इन पाँच तत्त्वों से सुनीता के सृजन-सरोकार की निर्मिति होती है। सुनीता जी के लिए कविता-लेखन जीवन को सार्थकता व पूर्णता प्रदान करने का अचूक साधन है। आस्थावादी स्वर में लिखी गई उनकी शुरूआती कविताओं का स्वर छायावादी रहा। परन्तु 64-65 के बाद उनका स्वर, शिल्प और मिजाज बिल्कुल बदल गया। उनकी प्रौढ़कविताओं का प्रमुख स्वर है : यथार्थ की अनुभूति और गहरी संवेदना । विदेश और अंग्रेजी भाषा से गहरे जुड़े होने के बावजूद उनकी कविताएँ 'शुद्ध भारतीय मानस' की अभिव्यक्ति हैं : ''हमें चाहिए / थोड़ी-सी धूप/ थोड़ी-सी हवा.../वृक्ष की तरह तनकर, और/ आकाश को/आपनी ही हरीतिमा से भर देंगे।'' पहले ही संकेत किया जा चुका है कि वे ऐसे लिखती हैं जैसे संवाद कर रही हों। वे अपनी जमीन, अपनी भाषा, अपने राग को कभी नहीं भूलतीं। यही कारण है कि उनके द्वारा रेखांकित संवेदनाओं, जटिलताओं, विरोधाभासों, विसंगतियों, प्रवंचनाओं से पाठक सहज ही तादात्म्य स्थापित कर लेता है; और मुझे लगता है, इसी में उनकी सार्थकता-प्रासंगिकता को रेखांकित किया जा सकता है।

सुनीता जी की कविताएँ जहाँ संवेदनात्मक हैं वहीं कथा-कहानियाँ यथार्थ की ठोस जमीन की अभिव्यक्तियाँ । बहुम कम पाठक-आलोचक यह जानते कि सुनीता जी ने अपने जीवन में कितना खोया और कितना पाया है। सुख-समृद्धि के उनके खुले आँगन में वेदना की काली अँधेरी छाया हमेशा मँडराती रही। निश्चय ही यह एक विरोधाभास है; और यह अतिशयोक्ति न होगी कि उनकी अधिकतर अभिव्यक्ति 'आह से उपजा होगा गान' ही है। ऐसे में यह कहना गलत होगा कि सुनीता जी का लेखन 'भरेपूरेपन की उपज' है। इसके विपरीत उनकी रचनाएँ 'गहरी संवेदना व अन्तर्वेदना की अभिव्यक्ति' ही है। उनके पात्र पीड़ा झेल रहे हैं लेकिन यह पीड़ा उनके व्यक्तित्व का विकास कर रही है। बकौल सुनीता जैन पीड़ा को स्वीकार करके वे आगे बढ़ते हैं। किसी समाधान की उनकी तलाश लगातार चलती रहती है। हाँ, यह जरूर है कि मेरी कहानियों में पात्रों का विद्रोह बहुत मुखर नहीं है। मेरी कोई नायिका घर नहीं छोड़ती, कोई भी नायिका तलाक नहीं लेती। उनकी कोशिश हर परिस्थिति में जीने की है।

'शब्दकाया' सुनीता जी की संघर्षपूर्ण किन्तु सफल कहानी बयाँ करती है। इस कृति से गुजरे बिना सुनीता जी को सम्पूर्णता में नहीं जाना जा सकता। स्त्री-विमर्श की दुहाई देने वाले हर पाठक-आलोचक के लिए यह अनिवार्य कृति है। यह कृति एक ऐसी स्त्री से परिचित कराती है 'जो अपने जीवट से अपना रास्ता ही नहीं तलाशती, विषमतापूर्ण-विद्रूपताओं से भरी हिन्दी की दुनिया में अपने को पूरी तरह प्रतिष्ठित भी करती है, बिना कोई समझौता किए।'

'बोज्यू' उनका बहुचर्चित उपन्यास है। यह पहले एक कहानी के रूप लिखा गया था, जिसे बाद में उपन्यास का रूप दे दिया गया। यह लिखा गया विदेश में रहकर, पर इसकी पृष्ठभूमि भारतीय थी। 'बोज्यू' में मुक्ता और चन्द्रमोहन का प्रेमाख्यान वर्णित है। इसमें परम्परा और सौन्दर्यबोध के बीच टकराहट देखने को मिलती है। लेखिका ने 'बोज्यू' में युवा-मानस की कोमलतम भावनाओं का सुन्दर अंकन किया है और विवाह सम्बन्धी विसंगतियों पर प्रश्नचिह्न लगाया है। हमारी दकियानूसी परम्पराओं के कारण नई पीढ़ी को आज भी स्वतंत्र निर्णय लेने की आजादी नहीं है। 'त्रासदी यह है कि बन्धक के मनोजगत का सच, केवल बोज्यू का सच नहीं है। उसकी पीढ़ी के ही नहीं, आज के अधिकांश भारतीयों के मनोजगत का सच भी है, क्योंकि हम आज भी जाति-बाधित हैं।' बहुत कुछ नया जानने-सीखने के बाद भी युवावर्ग को दुःख झेलना पड़ता है।

उनकी अधिकतर कहानियाँ 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', 'नई कहानियाँ', 'साहित्य अमृत', 'ज्ञानोदय' आदि पत्र-पत्रिकाओं में पूर्व प्रकाशित हैं। उनकी कहानियों में निहित स्पष्टता और स्वच्छन्दता ही पाठकों को अन्त तक बाँधे रखती हैं। सुनीता जी के कथा-साहित्य की पठनीयता के रहस्य को उद्घाटित करते हुए मृदुला जी लिखती हैं : 'गद्य में सुनीता की सम्प्रेषणीयता के दर्शन, सबसे सटीक रूप में उन शुरूआती कहानियों में होते हैं, जो विदेशी पृष्ठभूमि पर लिखी गई थीं। उस दौर में अधिकांश हिन्दी लेखकों और पाठकों के लिए वह परिवेश अनजाना था। फिर भी, सुनीता की रचनाओं में वह अपरिचित सम्प्रेषण में बाधक नहीं बना।...पृष्ठभूमि पार्श्व में रहकर पृष्ठभूमि बनी रहती है; पात्रों पर काबिज नहीं हो जाती। इसीलिए उनकी कथा पठनीय और सम्प्रेषणीय, दोनों रहती है। यह विलक्षण पठनीयता सुनीता के गद्य में ही नहीं, काव्य में भी मिलती है।'

भाषा और शिल्प का प्रश्न सुनीता जी के लिए एक जरूरी सवाल है। कथानक व पात्रों की माँग के अनुसार वे विविध संवाद का प्रयोग करती थीं, परन्तु आलंकारिक भाषा के प्रयोग के पक्ष में कभी नहीं रहती। कविता हो या कहानी, उपन्यास हो या समीक्षा, हर कहीं सुनीता जी ने सहज और संप्रेषणीय भाषा का प्रयोग किया है। यही सरलता सुनीता जी की पहचान है।

उनकी असामयिक मृत्यु हिन्दी साहित्य की अपूरणीय क्षति है! हमने एक सजग और सचेत कवि को खो दिया है।

सी-100, विश्वविद्यालय परिसर
डॉक्टर हरीसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय
सागर, मध्यप्रदेश-470003
मो. 08989154228

श्रद्धांजलि

मेरे सभी अनकिए अपराधों की क्षमा
मेरे भीतर मुरझा गए मेरे शतदल की क्षमा
मेरे आँखों में सुलगते निरन्तर जल की क्षमा

क्षमा कि मैं किसी के अनुरूप ढल न सकी
क्षमा कि मैं जहाँ उगी पीपल सा खड़ी रही
क्षमा कि मैं केवल स्त्री थी-
और उससे तनिक भी कम नहीं थी।
- सुनीता जैन

सुनीता जैन
जन्म : 13 जुलाई 1941
प्रयाण : 11 दिसम्बर 2017

प्रख्यात कवयित्री पद्मश्री सुनीता जैन की
प्रेरक-स्नेहिल स्मृतियों को नमन....
समावर्तन परिवार
उज्जैन, भोपाल, सूरत, मुम्बई, कोलकाता, इंदौर, गुना

श्रद्धांजलि

रमेशचन्द्र भावसार

समावर्तन कार्यालय को विगत दस वर्षों से कार्यालय सहायक तथा वाहन चालक के रूप में अपनी विनम्र सेवाएं देने वाले रमेशचन्द्र भावसार के असामयिक निधन पर समावर्तन परिवार की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि....

अनंतिम

चलिए किसी तरह गया साल गया और नया साल आ गया। अब तक जो जो होना था, सो सो हो गया, मसलन, नोटबंदी हो गई, जी.एस.टी. भी लग गया। राजनीति भी गरमाई, बल्कि गुजरात-चुनाव के दौरान आग-बबूला भी हुई और फिर सब हस्वे-मामूल चलने लगा है तो ऐसे में अब हम सब भारतीय जन के पास एक ही काम रह गया है कि प्रति वर्षानुसार सभी इष्ट मित्रों, प्रिय दुश्मनों, पास-पड़ोस-परिजनों को शुभ-कामनाएँ देने का परम पुनीत कर्तव्य प्रारंभ करें। गाजर घास की तरह शुभ-कामनाओं का स्टॉक इफरात में है। सही मायनों में यह सरस्वती का धन है, जितना खर्च करोगे, दिन दोगुना और रात चौगुना बढ़ता है। बूमरैंग की तरह वापस आकर माथे से टकराता भी है। हम सयाने हिन्दुस्तानी हैं। जानते हैं कि लेन-देन का यह धंधा चोखा है। हर्र लगे ना फिटकरी, मोबाइल पर व्हाट्स एप करो, मैसेन्जर का इस्तेमाल करो और जब जी चाहे, धड़ाधड़ शुभ-कामनायें भेज दो, और वह भला आदमी (भले ही भला ना हो) लिहाज या मुरब्बत या झुंझलाकर ही सही, एक छोटी कामना सधन्यवाद तो भेज ही देगा।

वैसे भी हम शुभकामनाओं के अलावा दे भी क्या सकते हैं ! किसी को दया दे नहीं सकते। भीख देने में हमारी जान जल जाती है। प्रेम-स्नेह का सवाल नहीं। आदर-सम्मान हम किसी को दे नहीं सकते। किसी को इज्जत देना हमें सुहाता नहीं है। इतना ही नहीं, लोगों से मिलने-जुलने के अवसरों पर हम हमेशा अपेक्षा करते हैं कि सामने वाला पहले हमें नमस्ते करे, मानो हम पहले नमस्ते कर लेंगे तो सामाजिक रूप से हीन और हल्के हो जायेंगे। हमारे जीवन भर की कुल कमाई इज्जत एक छोटे से नमस्ते की टौन पर टिक जाती है। बहुत शातिर ढंग से कनखियों से देखते रहते हैं। अगर उसने नमस्ते कर लिया तो हम मुदित-मन, चेहरे पर बड़प्पन का भाव लपेटे, हौले से सिर झटककर मुस्कुरा देंगे और, नहीं किया तो साला जिन्दगी भर का दुश्मन हुआ।

बाकी हमारा स्वभाव ऐसा बन गया है कि किसी को कुछ देने में हमें इतना बुरा लगता है जैसे जीवन का सर्वस्व देना पड़ रहा हो। हर वक्त हम इतने चौकस-चौकन्ने होते हैं कि कहीं कोई कुछ मांग ना ले, छुड़ा ना ले। इस कदर अविश्वास कि किसी के नमस्ते करने पर भी हमारा जी सहम जाता है कि नमस्ते किया है तो जरूर कोई काम होगा और कुछ मांगेगा। एक लतीफा है कि एक बूढ़ा रेलगाड़ी में सफर कर रहा था। बगल में बैठे एक नौजवान ने उसे नमस्ते कर पूछा - 'कितना समय हो गया है, बता दीजिये ?' बूढ़ा चुप रहा। नौजवान ने सोचा कि शायद ऊँचा सुनते हों, इसलिये अब की बार जरा जोर से पूछा। बूढ़े ने उसे सिर से पैर तक देखा और कहा -'नहीं बताऊँगा।' उसने फिर फिर पूछा। बूढ़े ने फिर फिर इन्कार किया। आखिर नौजवान ने कहा- 'बुजुर्गवार, आप घड़ी बांधे हुये हैं, फिर भी समय नहीं बता रहे हैं। यदि घड़ी खराब है, बंद है तो वैसा बता दो।' बूढ़े ने जबाब दिया - 'ना तो घड़ी बन्द है और ना ही खराब, लेकिन समय नहीं बताऊँगा।' लड़के ने हँसकर कहा- 'ऐसी क्या बात है ताउ !' बूढ़े ने घूरकर देखा और बोला कि तुमने अभी नमस्ते किया। फिर समय पूछा। फिर हाल-चाल पूछोगे। जल्दी ही पता-ठिकाना पूछने लग जाओगे। और फिर घर आना-जाना शुरू कर दोगे। घर में मेरी एक जवान बेटी है। एक दिन तुम उसका हाथ मांगने आ जाओगे और मैं अपनी बेटी की शादी ऐसे किसी आदमी से नहीं कर सकता जिसके पास एक अदद घड़ी ना हो। तुम अपना नमस्ते वापस लो और समय जानने का कोई और जुगाड़ करो।

पार्टियों-सभा-समारोहों में नमस्ते ना करना पड़े, इस गरज से लोग चलते हुये ठिठक जाते हैं, रास्ते बदल लेते हैं और चेहरे को पूरब से पश्चिम की ओर मोड़ने की कोशिश में दक्षिण तक खींच डालते हैं। ये वो लोग हैं जो किसी को कुछ दे नहीं सकते। उनके भीतर एक तराजू लगातार हिलता रहता है। वे नफा-नुक्सान के बाँटों से जीवन को तौल रहे हैं। उन्हें नफे की लत और लालच है और नुक्सान का डर और अंदेशा। इस तराजू में उन्होंने माँ-बाप, बीबी-बच्चे, दोस्त-पड़ोसी, सारे सकल संसार को तौलकर मोल के भाव लगा दिया है। जिन्होंने दयानतदारी और दानिशमंदी में उन्हें कुछ दिया, वे उनके प्रति कृतज्ञ नहीं, वफादार नहीं, आभारी नहीं, बल्कि बड़ी आसानी से उन्होंने यकीनी तौर पर मान लिया कि यह करिश्मा उनका हुनर, उनकी चालाकी और अकल का खेल था जो होशियारी से बेवकूफ बनाकर हासिल कर लिया। वे जिस स्कूल में पढ़े हैं, उसके हिसाब से हर भला आदमी अहमक है, हर शरीफ बोदा है, विनम्र डरपोक और उदार व्यक्ति मूर्ख होता है। वे सिर्फ अपने से बड़े कमीने से डरते हैं। अपने से ज्यादा नीच का सम्मान करते हैं और उनकी तरह होने की हर सिम्त कोशिश करते हैं। ये वो लोग हैं जिन्होंने अपनी बीबी को गुलाम समझा, भाई को दुश्मन, दोस्त को सीढ़ी और पड़ोसी को चोर समझा और जिन्दगी भर ना खुद चैन से रहे और ना ही दूसरों को रहने दिया।

ऐसे लोगों से ये दुनिया भरी पड़ी है। हर मोड़ पर, हर जोड़-तोड़ पर भेस बदलकर, चेहरे छुपाकर, मुखौटे पहिनकर कदम-कदम ये ही मिलते हैं। अब बताओ भला, ईश्वर की इन अनुपम कृतियों को नये वर्ष की क्या शुभ-कामनायें दूँ ! वे बगैर किन्हीं शुभ-कामनाओं के फल-फूल रहे हैं, बल्कि अक्सर हमें ही उनके आशीर्वाद की सख्त जरूरत पड़ जाती है। लेकिन एक भले आदमी को अपनी बेवकूफी का प्रमाण लगातार देते रहना चाहिये, ऐसा शास्त्रों में लिखा है। इसलिये मैं आपके अलावा उन्हें भी नये वर्ष की शुभ-कामनायें दे ही देता हूँ, हालांकि बखूबी जानता हूँ कि इसका कुछ मतलब ना होगा। चचा गालिब ने यूँ ही नहीं कहा था -

'क्या वो नमरूद की खुदाई थी,
बंदगी में मिरा भला न हुआ।' स

मोबाइलः 94250-14166

ઈન્ડેક્ષ્ટ-સી

ઈન્ડસ્ટ્રીઅલ એક્ષટેન્શન કોટેજ
(ગુજરાત સરકારની સંસ્થા)

રજી. ઓફીસ :
બ્લોક નં. ૭/૧, ઉદ્યોગ ભવન, સેક્ટર - ૧૧, ગાંધીનગર.
ફોન. : ૦૭૯ - ૨૩૨૫૪૨૬૧ - ફેક્સ:૦૭૯ - ૨૩૨૫૬૦૦૭
E-mail : exdire-indext-c@gujarat.gov.in
Website : www.craftofgujarat.gujarat.gov.in

ઈન્ડેક્ષ્ટ-સી - કુટિર અને ગ્રામોદ્યોગ સ્થાપવામા માહિતી અને માર્ગદર્શન પૂરું પાડતી ગુજરાત સરકારશ્રીની સંસ્થા

ઈન્ડેક્ષ્ટ-સીની રચના કોઈપણ નફાકારક પ્રવૃત્તિ સિવાયના નીચેના ઉદેશો માટે થયેલા છે.

૧. કુટિર અને ગ્રામોદ્યોગ સ્થાપવા ઈચ્છુક સાહસિકોને ઉદ્યોગોની પસંદગી, સ્થળ પસંદગી તથા જે તે ઉદ્યોગ માટે સરકારશ્રીના પ્રવર્તમાન પ્રોત્સાહનો / લાભો વિગેરેની જાણકારી આપવી.
૨. કુટિર અને ગ્રામોદ્યોગ ક્ષેત્રની વિવિધ સહાયની યોજનાઓને એકત્રિત કરી તે વિશે ભાવિ ઉદ્યોગ સાહસિકોને માહિતી આપવી અને આવી માહિતીનું સાહિત્ય પ્રકાશિત કરવું.
૩. કુટિર અને ગ્રામોદ્યોગ ક્ષેત્રના વિવિધ ઉદ્યોગની માહિતી અને ઉદ્યોગ માટેની રૂપરેખા (પ્રોજેક્ટ પ્રોફાઈલ)એકત્રિત કરી તે વિશે ઉદ્યોગ સ્થાપવા ઈચ્છુક વ્યકિતઓને તેની જાણકારી આપવી.
૪. કુટિર ઉદ્યોગ ખાતાની તથા કુટિર ઉદ્યોગ સંલગ્ન બોર્ડ / કોર્પોરેશનની વિવિધ યોજનાઓના ફોર્મ / અરજીપત્રક પૂરા પાડવા.
૫. કુટિર ઉદ્યોગના વિકાસ માટે જાહેરાત મારફત પ્રચાર ઝૂંબેશ ચલાવવી.
૬. કુટિર ઉદ્યોગના વિકાસ માટે સેમિનાર, વર્કશોપ તથા પ્રદર્શનનું આયોજન કરવું અને આવા આયોજન માટે સહાય પૂરી પાડવી.
૭. કુટિર ઉદ્યોગના વિકાસમાં ઉપયોગી હોય તેવી અન્ય પ્રવૃતિઓ હાથ ધરવી.
૮. કુટિર ઉદ્યોગ ક્ષેત્રની આર્થિક સમસ્યાઓના નિવારણ માટે બેન્કો તથા અન્ય નાણાંકીય સંસ્થાઓ જોડે ચર્ચા-વિચારણા હાથ ધરવી.